Nagari Pracharini Sabha Educational Series

भाषासारसंग्रह

पहिला भाग

काशी नागरीप्रचारिणी सभा के कतिपय सभासदों द्वारा सभा के आज्ञानुसार संगृहीत और सम्पादित

TENTH IMPRESSION.

इण्डियन प्रेस, प्रयाग

१९१० ई०

[मूल्य ।≈)

सूचीपत्र

पृष्ठांक

भाषासारसंग्रह

पहिला भाग

टेम्स नदी पर हिम का मेला *

उस देश के रहनेवाले जहाँ गरमी अधिक और सरदी कम पड़ती है, इस बात पर, जो वर्णन की जाती है, विश्वास न करेंगे और कहेंगे कि क्या और देशों में इतनी सरदी पड़ती है कि पानी जम कर पत्थर की चट्टान की नाईं हो जाता है? इँगलिस्तान में प्रतिवर्ष बहता जल जम जाता है, परन्तु टेम्स नदी जो वहाँ की सब नदियों में बड़ी और प्रसिद्ध है और जिसके दोनों ओर लंडन नगरी बसी हुई है, उसका पानी कई बार जम कर मानो एक पत्थर की चट्टान सा हो गया। सन् १०९२, सन् १५६४ और फिर सन् १६८३ ईसवी में वह ऐसी ही जम गई थी। तीसरी बार का वर्णन ईवलिन साहब ने यों लिखा है कि जैसा जाड़ा इस बार पड़ा है वैसा कई वर्षों से इँगलिस्तान में नहीं पड़ा था। इस बार सम्पूर्ण टेम्स नदी का जल शीत की अधिकाई से जम कर ऐसा

---

* यह लेख शेरिङ्ग साहब लिखित भूचरित्रदर्पण से लिया गया है।

कड़ा हो गया था कि वह एक नगर के भार उठाने योग्य हो। जब लोगों ने ऐसा देखा तो तुरन्त उस पर आ बसे। गलियों के चिह्न हुए, दुकानें बस गईं और उनमें उत्तम उत्तम वस्तुएं बिकने लगीं। उसकी गलियों में लोग भाँति भाँति के यानों पर चढ़ कर घूमने लगे। एक स्थान पर लोगों ने आग सुलगा कर समूचे जन्तु का मांस पकाया। एक ओर स्थल के अद्‌भुत अद्‌भुत पशु-पक्षी दिखाई देते थे, जिन्हें लोग पहियेदार कटघरों में बन्द कर और उनमें घोड़े जोत करके ले जाते थे। एक ओर चायघर था जहाँ लोग बैठ कर चाय पीते थे। कहीं चर्खी थी जिस पर चढ़ कर लोग झूलते थे और एक ठौर बहुत सी नावें थीं जिनके छज्जे और मसतूल पर पाल और ध्वजाएँ लगी थीं। कभी उन्हें मल्लाह घोड़ों से और कभी रस्सा लगा कर आपही बरफ़ के ऊपर खींचते थे।

एक आश्चर्य्य की बात यह थी कि किसी ने एक मुद्रायन्त्र हिम पर खोला और एक कवि ने एक कविता रच कर उसमें छपवाई। उसका भावार्थ यह है—

चलो छापेख़ाने में देखने वालो।
कुटुम्बों का नाम और अपना छपालो॥
चतुर जन हैं सभी उसके कर्म्मचारी।
मजूरी ले काम अपना करते सँवारी॥
पर अचरज ये हैं छापते उस ठहर हैं।
जहाँ नित्य सब डूब कर जाते मर हैं॥

उस समय दूसरा चार्लस अपनी रानी, राजकुँवर और अनेक सेवकों के साथ मेले में आया और कुछ पारितोषक दे कर उसने अपना नाम उस यन्त्रालय में छपवाया। एक पत्र जिसमें राजा और सब सेवकों के नाम, वर्ष, महीने और तिथि-सहित छपे थे, अबलों वहाँ के अजायबघर में रक्खा है और सबसे उत्तम वस्तु समझा जाता है।

सन् १७३९ ईसवी में फिर ऐसी ही दशा हुई और सन् १७८९ में इतना पाला पड़ा कि नदी का जल अठारह फ़ोट मोटा जम गया। फिर उस पर मेला लगा, पर जब पाला पिघलने लगा तो लोग बड़ी आपदा में पड़े। सब दूकानदार डर के मारे अपनी अपनी वस्तुओं को किनारे पर फेंकने लगे। नदी के ऊपर हिम में दरारें फट गईं, इसलिए मल्लाहों ने उन पर पटरे बिछा दिये और जो लोग उन पर से जाते थे उनसे कुछ पैसे ले लेने लगे। पर जब भीड़ की भीड़ उन पटरों पर झुक पड़ी तो वे पैसे न ले सके और उन्होंने पटरों को उठा लिया। तब तो कौतुक देखनेवाले दरारों पर कूदने लगे और कूदने के समय मनुष्यों की भीड़ के कारण बहुतेरे लोग पानी में गिर पड़े।

उस समय के कौतुकों में एक कौतुक यह था कि एक मनुष्य ने हिम के ऊपर एक डेरा खड़ा किया और उसके बाहर यह विज्ञापन लगाया था कि यह तम्बू भाड़े के लिए है, पर इसका अधिकारी हिम साहब है और उसके काम का ठिकाना नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि थोड़े दिनों के पीछे उसके साथियों में

फूट होगी और कोठी टूट जायगी। उस समय सब लेखा जोख पिंचलाहट साहब के हाथ में सौंपा जायगा।

सब से अन्तिम मेला जो अब तक प्रसिद्ध है सन् १८१४ ईसवी में हुआ था। इसके होने के पहिले लंडन नगर पर ऐसा कुहरा पड़ा कि दिन रात के समान हो गया और ऐसा अन्धेरा हुआ कि लोगों ने घरों में दिये और सड़कों पर पलीते बाले। ऐसी अवस्था में एक धनी अपने घर से एक मित्र की भेंट करने के लिए निकला। पर कई घण्टों तक वह भटकता फिरा और अन्त में अपने मित्र का घर न पाकर लौट आया। जब कुहरा दूर हुआ तो पाला पड़ने लगा और टेम्स नदी का जल जम गया। फिर मेला लगा और लोगों ने आग सुलगा कर मांस पकाया। पाले की ऐसी दशा केवल पाँच दिन तक रही। ज्वार के वेग से नदी के ऊपर का पाला फट गया। उसकी एक चट्टान पर, जो अलग हो गई थी, एक डेरा था जिसमें नौ मनुष्य सोते थे। जब ज्वार के वेग से वह चट्टान डगमगाने लगी तो वे लोग चौंक पड़े और डर के मारे बलता हुआ दिया भीतर ही छोड़ कर भागे। अचानक डेरे में आग लगी और सारा तम्बू भस्म हो गया। आग लगने के समय एक पटेला जो छूटा हुआ था उस चट्टान के पास आकर लग गया, इसीके द्वारा उन लोगों के प्राण बचे। प्रायः ऐसे विचित्र मेलों में बहुत से लोग जान बूझ कर अपने प्राण दे ... ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र *

श्रीमान् कविचूड़ामणि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सन् १८५० ई० के सितम्बर मास की ९ वीं तारीख़ को बनारस में जन्म लिया था। जब वे पाँच वर्ष के थे तो इनकी पूज्य माताजी और ९ वर्ष के हुए तो महामान्य पिता बाबू गोपालचन्द्रजी का स्वर्गवास हुआ, जिससे उनको माता पिता का सुख बहुत ही कम देखने में आया। उनको शिक्षा बालकपन से दी गई थी और उन्होंने कई वर्ष लों बनारस कालेज में अँगरेज़ी तथा हिन्दी पढ़ी थी। उस समय बनारस कालेज में हिन्दी के अध्यापक पण्डित लोकनाथ चौबे थे। चौबेजी हिन्दी के बहुत अच्छे कवि थे। बाबू साहब की विलक्षण बुद्धि देख कर वे अपने इष्ट मित्रों से कहा करते थे कि यह बालक विशेष होनहार है। बाबू हरिश्चन्द्र ने संस्कृत, फ़ारसी, बँगला, मराठी आदि अनेक भाषाओं में अपने घर पर इतना परिश्रम किया था कि तैलङ्ग और तामिल भाषाओं को छोड़ कर वे भारतवर्ष की समस्त देशभाषाओं को जानते थे। उनकी विद्वत्ता, बहुज्ञता, नीतिज्ञता, और विलक्षण बुद्धि का वृत्तान्त सब पर विदित है। कहने की कोई आवश्यकता नहीं। उनकी बुद्धि का चमत्कार देख कर लोगों को आश्चर्य होता था कि इतनी अल्प अवस्था में यह सर्वज्ञता! कविता की रुचि बाबू साहब को बालकपनही से थी। उनकी उस समय की कविताओं के पढ़ने से जब कि वे बहुत छोटे थे, बड़ा आश्चर्य होता है, तो

* महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी द्वारा चन्द्रास्त से सङ्कलित।

नेक बार देश-देशान्तरों में व्याख्यान भी दिये। उनकी वक्तृता
रल और हृदयग्राहिणी होती थी। उनके लेख तथा वक्तृत्व में
दा का अनुराग झलकता था। विद्या का सम्मान जैसा वे करते
वैसा करना आज कल के लोगों के लिए कठिन है। ऐसा कोई
ा विद्वान् न होगा जिसने उनसे आदर-सत्कार न पाया हो।
ाशी के पण्डितों ने जो अपना हस्ताक्षर करके बाबू साहब को
ंसापत्र दिया था, उन लोगों ने स्पष्ट लिखा है कि—

"सब सज्जन के मान को कारन इक हरिचन्द।
जिम स्वभाव दिन रैन के कारन नित हरिचन्द॥"

जब काशी में राजघाट पर गङ्गाजी के पुल बँधने में काम लग
रहा था, उस समय एक दिन पण्डित सुधाकर द्विवेदी को साथ
लेकर वे कलें देखने गये। लौटती समय पण्डितजी ने यह दोहा
पढ़ा—

"राजघाट पर बँधत पुल जहँ कुलीन की ढेरि।
आज गये कल देखि के आजहिँ लौटे फेरि॥"

इस पर प्रसन्न होकर उन्होंने उसी समय पण्डितजी को सौ
रुपये का नोट पारितोषिक दिया।

बाबू साहब दानियों में मानो कर्ण थे, बस इतना ही कहना
बहुत है क्योंकि उनसे सहस्रों मनुष्यों का कल्याण होता था।
विद्या की उन्नति के लिए भी उन्होंने बहुत कुछ व्यय किया।
५०० रु० तो उन्होंने पण्डित परमानन्दजी को "बिहारी-सतसई"

की संस्कृत टीका रचने का दिया था और इसी प्रकार वे कालेज और स्कूलों में भी समय समय पर उचित पारि[illegible] बाँटते थे। जब जब बङ्गाल, बम्बई और मदरास में परीक्षोत्तीर्ण हुईं, तब तब उन्होंने उनके उत्साह बढ़ाने को बनारसी साड़ियाँ भेजीं। वे गुणग्राहक भी एक ही थे, [illegible] गुणियों के गुण से प्रसन्न हो कर उनको यथेष्ट द्रव्य देते थे। तात्पर्य यह कि जहाँ तक बना उन्होंने दिया; और कभी देते हाथ न रोका।

वे परम राजभक्त थे। जब प्रिंस आफ़ वेल्स आये थे तो उ[illegible] अनेक भाषाओं के छन्दों में बना कर स्वागत ग्रन्थ उनके अर्पण किया था। ड्यूक आफ़ एडिन्बरा जिस समय यहाँ पधारे थे उस समय बाबू साहब ने उनके साथ ऐसी राजभक्ति प्रकट की कि जिससे ड्यूक उन पर ऐसे प्रसन्न हुए कि जब तक वे काशी में [illegible] उन्होंने बाबू साहब पर विशेष स्नेह रक्खा।

देशहितैषियों में पहिले उन्हीं के नाम पर अँगुली पड़ती है क्योंकि वे ऐसे देशहितैषी थे कि उन्होंने अपने देश के गौरव स्थापित रखने के लिए अपने धन, मान और प्रतिष्ठा को एक रख दिया था और सदा वे उन सब के सुधारने का उपाय सोचते रहे। उनको अपने देशवासियों पर कितनी प्रीति थी यह उनके ग्रन्थों के पढ़ने से भली भांति विदित हो सकती है, उनके लेखों से उनकी देशहितैषिता और देश की सच्ची [illegible] है।

बाबू साहब अज्ञातशत्रु थे, इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं है। ार उनका शील ऐसा अपूर्व था कि साधारण लोगों की क्या त्था, भारतवर्ष के प्रधान प्रधान राजे महाराजे नवाब और ाहज़ादे भी उनसे मित्रता का बर्ताव करते थे। इसी प्रकार मेरिका और योरप के सहृदय तथा प्रधान लोग भी उन पर पूरा नेह रखते थे।

हिन्दी के लिए तो बाबू साहब का मानो जन्मही हुआ था। ह उन्हीं का काम था कि वे हिन्दी गद्य में एक नई जीवनी शक्ति ा सञ्चार करके उसके लेखकों के पथदर्शक और उसके भण्डार ो पूर्ति के प्रधान कारण हुए। हिन्दी गद्य के जन्मदाता तो ल्लूलालजी हुए, परन्तु यह बाबू हरिश्चन्द्र का ही कार्य था उन्होंने इसको नवीन रूप से अलङ्कृत कर इस भाषा का ाय बढ़ाया। इसी कारण से आज दिन हिन्दी के पठित समाज े सर्वमान्य और सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। उनके अनेक गुणों से तुष्ट हो सन् १८८९ ई० में पण्डित रामशङ्कर व्यास के प्रस्ताव : हिन्दी समाचार पत्रों के सम्पादकों ने उन्हें 'भारतेन्दु' की दवी दी थी।

बाबू साहब का धर्म वैष्णव था। वे धर्म में बड़े पक्के थे, पर ाडम्बर से दूर भागते थे। उनके सिद्धान्त में परम धर्म भग- प्रेम था। वे मत या धर्म को केवल विश्वासमूलक मानते थे, ्रमाणमूलक नहीं। सत्य, अहिंसा, दया, शील, नम्रता आदि ग्रिन्द्य को भी वे धर्म मानते थे। वे प्रायः कहा करते थे कि यदि

मेरे पास बहुत सा धन होता तो मैं चार काम करता (१) श्री ठाकुरजी को बगीचे में पधराकर धूम धाम से ... का मनोरथ करता; (२) इँगलैंड, फ़्रांस और अमेरिका ... (३) अपने उद्योग से एक शुद्ध हिन्दी की युनिवर्सिटी ... करता और (४) एक शिल्पकला का पश्चिमोत्तर प्रदेश में ... बनाता। परन्तु इन इच्छाओं में से वे एक भी पूरी न कर सके। उनके आमोद की वस्तुएं राग, वाद्य, रसिकसमागम, ... देश देश और काल काल की विचित्र वस्तुएं और भाँति भाँति की पुस्तकें थीं। काव्य उनको जयदेव, देव, नागरीदास, ... और आनन्दघन का अत्यन्त प्रिय था।

ये रुग्ण तो कई बेर हुए थे, पर भाग्य अच्छे थे इससे बराबर अच्छे होते गये। किन्तु सन् १८८२ ईसवी में श्रीमन्महाराणा उदयपुर से मिल कर जाड़े के दिनों में वे लौटे आते समय मार्ग में रोग ने उन्हें धर दबाया। बस, पहुँचने के साथ ही वे श्वास रोग से पीड़ित हुए। रोग दिन दिन अधिक होता गया, परन्तु शरीर अन्त में कुछ अच्छा हो गया। यद्यपि देखने में कुछ दिनों तक रोग जान न पड़ा, पर भीतर भीतर वह बना रहा और जड़ से नहीं गया। सन् १८८४ के ... में फिर श्वास चलने लगा। कभी कभी ज्वर का आवेश भी आता। औषध बराबर होती रही, पर उससे कुछ लाभ न हुआ। श्वास अधिक हो चला और क्षयी के चिह्न देख पड़े। एका... नवरी, सन् १८८५ से पीड़ा बढ़ने लगी। ६ वीं तारीख़

ातःकाल जब दासी समाचार पूछने भाई तो आपने कहा
कि हमारे जीवन के नाटक का प्रोग्राम नित्य नया छप रहा है,
सके पहिले दिन ज्वर की, दूसरे दिन सूल की भैार तीसरे
दिन खाँसी की तीन तो हो चुकीं, अब देखें लास्ट नाइट कब होती
है। उसी दिन रोग इतना बढ़ा कि अन्त को रात के १० बजे
श्रीकृष्ण, श्रीराम कहते कहते यह भारतेन्दु भारत के दुर्भाग्यरूपी
घनाच्छन्न गगन में विलीन हो गया भैार अपनी कौमुदीरूपी
अक्षय कीर्ति का विकाश उस समय तक के लिए स्थिर रख गया
कि जब लों भूमण्डल पर हिन्दी भाषा भैार नागरी अक्षरों का
लोप न हो।

भूचाल का वर्णन*

प्राचीन समय के लोग भूचाल का कारण नहीं जानते थे
भैार उस समय के लेखकों ने भी भूकम्प का भैार समुद्र के घटने
बढ़ने तथा पृथ्वी के ऊँची नीची होने का कुछ वर्णन नहीं किया,
परन्तु भूचाल से जो जो हानियाँ बस्ती को हुई उन्हें लिखा है।
जब से हुक साहब ने अपने विचार से भूकम्प के कारणों को प्रकट
किया तब से लोगों को इसका ज्ञान हुआ।

सन् १६९२ ईस्वी में जमैका नाम के टापू में ऐसा भूकम्प
हुआ कि धरती समुद्र की नाईं लहराने भैार हिलने लगी भैार
कहीं कहीं यह ऐसी धधक उठी कि बड़े बड़े दरार इसमें फटे

* यह लेख शेरिङ्ग साहब लिखित भूचरित्रदर्पण से लिया गया है।

और फिर मिल गये । बहुतेरे लोग उन दरारों में गिर कर
गये और बहुतेरे जिनका आधा अङ्ग भीतर और आधा बाहर
दब कर मर गये। बहुधा लोग ऐसे मरे कि उनका केवल सि
दिखाई देता था और बहुतेरे लोग दरार में पड़ कर
झोंके से दूर जा पड़े। समुद्र के तीर बन्दर स्थान पर जितने ज
और घर थे सब डूब गये । उनमें से कितने चौबीस और
छत्तीस तथा अनेक अड़तालीस फ़ीट तक समुद्र में धँस
परन्तु उन डूबे हुए घरों के कंगूरे और जहाज़ों के मस्तूल
देते थे। पोर्टरायल नगर के निकट धरती एकाएक धंस गई
वहाँ समुद्र बहने लगा । बहुत दिनों तक डूबे हुए घरों की
पर एक जंगी जहाज़ चलता रहा, अन्त में वह छत पर टिका
जिसके बोझ से छत टूट गई और वह नीचे धँस गया ।
के सौ वर्ष पीछे लोग वहाँ गये और उन्होंने समुद्र के निर्मल
में डूबे हुए घरों को देखा । जमैका टापू की धरती
सहस्रों स्थान पर फट गई और एक ठौर, जहाँ आगे लोग ब
और खेती बारी होती थी, एक सरोवर बन गया और एक
धरती का अपने स्थान से आध मील की दूरी पर हट गया।
बड़े बड़े पहाड़ धँसके और उनसे नदियाँ निकलीं। वे
आठ पहर तक बहने से रुकी रहीं पर जब बहीं तो उनमें
हुए पेड़ बहते दिखाई पड़े।

सन् १६९३ ईसवी में सिसली के टापू में कई बार भू
आया। ग्यारहवीं जनवरी को कटेनिया नगर और उसके

उनचास गाँव नष्ट हो गये और एक लाख मनुष्य मरे। नेटो
र में एक सड़क धँस गई और उसके एक ओर के भवन झुक
और तिरछे दिखाई देने लगे। पेरू देश में सन् १७४६ ईसवी
आठ घण्टे के भीतर दो सौ बार भूकम्प हुआ और समुद्र दो
धरती पर चढ़ आया और फिर हट गया। इसीसे लीमा
र नष्ट हो गया और समुद्र का तट बन्दरस्थान बन गया और
र बन्दरस्थानों* में बड़ा हलचल पड़ गया। बन्दरस्थान में सब
स जहाज़ लगे हुए थे। उनमें से उन्नीस डूब गये और चार
हाज़ जिनमें से एक सामरिक पोत था, लहरों के मारे धरती
चढ़ आये। भूचाल के पहिले इस नगर में चार सहस्र लोग
रहते थे, पर पीछे केवल दो सौ मनुष्य बचे और कोट (गढ़) के
क भाग को छोड़ कर नगर का कुछ भी पता न लगा।

सन् १७५१ ईसवी के मई महीने की चौबीसवीं तिथि को
ली देश का कन्सप्शन नाम का प्राचीन नगर भूचाल से
हो गया और उस स्थान पर समुद्र बहने लगा। वहाँ के
ासी कहते हैं कि समुद्र के नीचे की धरती भूकम्प से चौबीस
ऊँची हो गई। इसी कारण कन्सप्शन बन्दरस्थान से दो
की दूरी तक जहाज़ नहीं आ सकते। सन् १८२२ ईसवी में
ी देश में फिर भूचाल आया और बारह सौ मील उत्तर से
ण तक उसकी धमक हुई। दूसरे दिन जान पड़ा कि
ल्परेज़ो नगर के निकट की धरती ऊँची हो गई, क्योंकि लोग

* वे स्थान जहाँ जहाज़ लंगर डाल कर ठहरते हैं।

र पहुँचा जहाँ दो वर्ष पहिले लंगर पर टिका था, तो उसके
रतान ने इस बात को जाना कि पहिले की अपेक्षा इस स्थान की
हराई आठ फ़ीट कम हो गई है, और कितनी चट्टानें जो पहिले
मुद्र के नीचे थीं अब ऊपर निकल आई हैं। सड़ी हुई सीपियाँ
ार मछलियाँ जो समुद्र की लहरों से सूखे में आ गई थीं,
दिखाई दीं और समुद्र के किनारे पर बहुत दूर तक जड़ से उखड़े
ुए पेड़ देख पड़े।

सन् १७५५ ईसवी के नवम्बर महीने की पहिली तारीख़ को
ुर्तगाल की राजधानी लिसबन नगर में ऐसे वेग का भूडोल हुआ
क जैसा वर्तमान काल में कहीं देखने में नहीं आया। धरती के
ीचे से एकाएक गड़गड़ाहट का शब्द सुनाई दिया और नगर के
क भाग के छोड़ कर सब का सब नष्ट हो गया। इस दुर्घटना
े कारण ६ मिनट में साठ सहस्र मनुष्य मरे। पहिले तो समुद्र
ीछे हट गया और बन्दरस्थान सूख गया, और फिर इतना बढ़ा
क नियत स्थान से पचास फ़ीट ऊँचा हो गया। कई एक बड़े बड़े
र्वत ऊपर से नीचे तक हिल उठे। इस भूकम्प की धमक बड़ी
ूर तक पहुँची थी। हम्बोल्ट साहब ने अनुमान किया है कि
ृथ्वी का यह तल जो योरप से चौगुना है इस भूचाल से हिला।
स भूकम्प की धमक वेस्टइनडोज़ तक पहुँची और समुद्र का
लरा, जो किनारे पर दो फ़ीट से अधिक नहीं चढ़ता था, तीस
ीस फ़ीट तक चढ़ गया, तथा समुद्र का जल काला हो गया और
नेडा देश की झील तक उसकी धमक पहुँची और अफ़्रिका के

उत्तर अलजीयर्स और फ़ेज़ देशों की धरती बड़े वेग से हिली मोराको से चौबीस मील की दूरी पर एक गाँव था जो आठ दस सहस्र मनुष्यों के साथ पृथ्वी में धँस गया और फिर भूमि हो गई, माना पहिले वहाँ कोई गाँव था ही नहीं। इस के पहिले लिसबन नगर में समुद्र के तीर पर लोगों के चलने लिए संगमरमर की एक भीत थी। जब भूचाल से लोगों के घर गिरने लगे तो वहाँ जाकर लोगों ने शरण ली। इस भीत के मनुष्यों से भरी हुई बहुतेरी नावें भी थीं। अचानक सब लोग और नावें पानी में डूब गईं और फिर किसी का कुछ भी पता न लगा।

एक जहाज़ लिसबन नगर के पश्चिम ओर वाले समुद्र में था। जब भूचाल आया तो वह ऐसा हिला कि उसके कप्तान ने सम कि वह धरती पर टिक गया। तथा एक और जहाज़ ऐसे वेग से हिला कि उस पर के मल्लाहों के पाँव डेढ़ डेढ़ फ़ीट तक उस से उठ गये। इँगलिस्तान के पोखरों, नदियों और झीलों में भी अद्भुत रीति की गति हुई। गणित से जान पड़ता है कि भूकम्प एक मिनट में बीस मील आगे बढ़ता था। स्पेन देश तट पर समुद्र का पानी साठ फ़ीट तक ऊपर चढ़ आया और टंजीर्स स्थान में समुद्र आठ बार चढ़ा। बड़े आश्चर्य की बात कि भूकम्प के आरम्भ में तो समुद्र घट गया था, पर पीछे से फि बड़े वेग से चढ़ आया। एक साहब अनुमान करते हैं कि समु ... च. की धरती में बाष्प के इकट्ठे होने से धरती खोखल
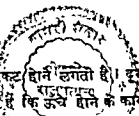
ाकर धँस जाती है और ज्वाला प्रकट होने लगती है। दूसरे साहब दूसरी रीति से अनुमान करते हैं कि ऊँचे होने के कारण समुद्र एक ओर हट जाता है और धरती धँस जाती है, तब समुद्र का पानी फिर बड़े वेग से बढ़ आता है। तीसरे साहब यों कहते हैं कि जब समुद्र के नीचे की धरती ऊँची हो जाती है तब पानी अपनी स्वाभाविक रीति पर नीचे की ओर बहता है और उसकी लहरें किनारे तक पहुँचती हैं, इसके पीछे पानी अपने स्थान पर आ जाता है। डरीन साहब की समझ में यह बात आई कि जैसे धुआँकस जहाज़ के चलने से लहरों पर उसका वेग पहुँचता है और पहिले किनारे से पानी हट जाता और फिर उस ओर बढ़ आता है, वैसे ही भूचाल से पहिले समुद्र का जल हट जाता और पीछे बढ़ आता है।

सन् १७६२ ईसवी में बंगाल देश के चटगाँव प्रदेश में भूडोल आया, जिससे सारा देश हिल गया और कहीं कहीं धरती से ज्वाला निकलने लगी और उसके साथ पानी तथा कीचड़ फुहारे की नाईं पृथ्वी में से निकले। बर्दवान में एक नदी सूख गई और बरचरा स्थान की धरती, जो समुद्र के किनारे पर है, धँस गई और उसमें दो सौ मनुष्य और बहुत से पशु नष्ट हुए। मग नाम की पर्वत-श्रेणी वाला ससलोंगतूम नामक पहाड़ धँस गया और एक पहाड़ ऐसा धँसा कि उसकी चोटी छोड़ कर और कुछ दिखाई नहीं देता था। कई गाँव उसके नीचे हो गये। इस कारण उनके

मनुष्य उसकी दरारों में गिर पड़े और फिर जीते हुए पानी फुहारों के साथ बिना परिश्रम ऊपर निकल आये हैं। निकलने से धरती ऐसी फट जाती है कि जैसे शीशा तोड़ने चूर चूर हो जाता है। एक पर्वत की तराई में भूकम्प के एक बड़ी दरार फट पड़ी जिसमें बहुत मिट्टी और वृक्षादि तिस पर भी भूचाल के पीछे वह पाँच सौ फ़ीट लम्बी और सौ फ़ीट गहरी रह गई। एक स्थान में और एक दरार फटी की लम्बाई एक मील के लगभग और चौड़ाई एक सौ पाँच फ़ी और गहराई तीस फ़ीट थी। इस भूचाल की धमक से एक आध मील तक फट गया था।

समीनारा स्थान पर एकाएक सत्रह सौ पचास फ़ीट लम्बा नौ सौ सेंतीस फ़ीट चौड़ा और बावन फ़ीट गहरा एक सरोवर बन गया। वहाँ के निवासी इस सरोवर के पानी को हानिकारक समझ कर, चाहते थे कि एक नहर खोद कर उसके जल को बाहर निकाल दें और इसी विचार से उन्होंने बहुत कुछ व्यय करके एक नहर बनवाई भी, पर उसका पानी न निकल सका क्योंकि जितना जल नहर से बहता था उतना ही उसके सोते से निकल आता था। भूचाल के समय धरती ऊपर को उठ जाती है। इसका एक प्रमाण यह है कि जो जो वस्तुएं धरती के ऊपर रहती हैं वे भी साथ उठती और जब गिरती तो उलटी गिरती हैं। एक दिन तक गुम रही और पीछे अपने स्थान से हट कर लगी। एक स्थान पर एक बगीचा था जिसमें एक

। और बहुतेरे वृक्ष थे। ये सब वृक्ष अपने स्थान से हट कर
ो फ़ीट नीचे ज्यों के त्यों जा लगे, पर भवन और उसके रहने
: अपनी जगह पर जैसे के तैसे बने रहे। उस वर्ष बग़ीचे में
अधिकता से लगे। अब तक इस बात का पता लगा है कि
भूचालों से पचास बड़े बड़े और दो सौ पन्द्रह छोटे छोटे
ावर बन गये हैं।

इस भूचाल के भय से सिसली देश के राजा ने अपनी प्रजा
यह आज्ञा दी कि छोटी छोटी नावों पर समुद्र में रहा करो।
ों ने आज्ञा का पालन किया और उसी वर्ष के फ़रवरी महीने
पांचवीं तिथि को सन्ध्या के समय बहुत से लोग तो नावों
थे और बहुत से समुद्र के तट पर सोते थे। अचानक धरती
लने लगी और जैसे नामक पहाड़ फट गया और उससे एक
ड़ी भारी चट्टान चटक कर तट पर गिरी, तथा समुद्र तुरन्त
स फ़ीट ऊँचा हो अपने स्थान से तट पर चढ़ आया जिस
जितने मनुष्य वहाँ थे सब के सब बह गये। तट पर की
तनी नावें तो डूब गईं और कितनी तट से टकराकर चकना-
र हो गईं और राजा चौदह सौ मनुष्यों के साथ नष्ट
ा गया।

कलाब्रिया और सिसली देश में उस भूचाल की धमक से
हुतेरे लोग घरों के नीचे दब गये, बहुतेरे अपने अपने घरों की
अग्नि के प्रचण्ड होने से जल गये और बहुतेरे धरती की दरारों में

गिर कर मर गये। इस दुर्घटना में चालीस सहस्र मनुष्य उ
से मरे जिनकी उत्पत्ति उस भूचाल से हुई थी।

सन् १८११ ईसवी में उत्तर अमेरिका के दक्षिण भा
केरोलिना स्थान के दक्षिण एक ऐसा भूकम्प हुआ कि ति
गाँव से उड़ीओ नदी के एक सिरे से ले कर फ्रांसिस नदी
दूसरी ओर की धरती ऐसी हिली कि वहुतेरे नये नये द्वीप
सरोवर बन गये। यह देखा गया है कि बहुधा ज्वालामुखी
के निकट के स्थानों में भूकम्प होता है, पर इस भूकम्प के
कोई भी ज्वालामुखी पर्वत न था। फ़लिंट साहब लिखते हैं कि
स्थान पर बड़ा भारी सरोवर बन गया और जब वह सूख
तो उसमें बाल दिखाई देने लगा और फिर एक घन्टे के
बीस बीस मील के लम्बे कई एक सरोवर देख पड़े, तथा कई
बड़े बड़े सरोवर जो पहिले जल से भरे हुए थे सूख गये।
मडरिड का समाधिस्थान अपने स्थान से हट कर मिसी
नदी में जा रहा, और गाँव की धरती और नदी का तट
मील तक अठारह फ़ीट नीचे धँस गया और जंगल के वृक्ष
टूटे हुए देख पड़े। उस स्थान के निवासी कहते हैं कि जब
बहुत हिली और समुद्र की नाईं लहराने लगी, तब वह फट
और उसकी दरार से पानी, बालू और कोयले निकले।

२ ई० में करकस नगर में भूकम्प हुआ। उस समय
ते हुए पानी की नाईं हिलने लगी, और उसके नीचे
शब्द सुनने में आया। सारा नगर बात की

नष्ट हो गया और दस सहस्र मनुष्य दब कर मर गये। पहाड़ों से बड़ी बड़ी चट्टानें अलग हो गईं। सिला नाम का एक पहाड़ पहिले की अपेक्षा तीन चार सौ फ़ीट नीचा हो गया और एक स्थान पर धरती फट गई, वहाँ से बहुत सा पानी निकला।

सन् १८१५ ईसवी में संबावा टापू में जो जावा टापू से दो सौ मील पर है, भयानक भूकम्प आया। इसके पहिले वहाँ एक ज्वालामुखी पर्वत था। यह भूचाल पाँचवीं अप्रैल को प्रारम्भ हुआ और जुलाई के महीने तक रहा। उसकी गड़गड़ाहट सुमात्रा टापू तक जो वहाँ से नौ सौ सत्तर मील दूर था, पहुँचती थी। इस टापू के टम्बोरो सूबे में पहिले बारह सहस्र मनुष्य रहते थे, और भूचाल के पीछे केवल २६ मनुष्य वहाँ शेष रह गये। कई स्थानों पर धरती से लावा* निकला और ज्वालामुखी से राख और मिट्टी निकल कर पहाड़ के एक ओर चालीस मील और दूसरी ओर तीन सौ मील तक गिरी, जिससे आकाश में ऐसा अन्धकार हुआ कि वैसा अँधेरी रात में भी नहीं होता है। यह राख और मिट्टी जहाँ कहीं समुद्र में गिरी वहाँ जहाज़ का चलना बन्द हो गया। टम्बोरो स्थान में समुद्र बहने लगा और भूकम्प के पीछे भी समुद्र अपने स्थान से अठारह फ़ीट बढ़ा ही रहा।

सन् १८१९ ईसवी में कच्छ देश में ऐसा भूडोल आया कि भुज नाम का प्रधान नगर सम्पूर्ण नष्ट हो गया। उस भूकम्प की

* एक प्रकार का द्रव पदार्थ जो ज्वालामुखी पहाड़ से निकलता है।

धमक अहमदाबाद तक पहुँची थी और वहाँ की एक ब
मसज़िद, जिसे सुलतान अहमद ने साढ़े चार सौ वर्ष पहि
बनवाई थी, गिर पड़ी। अनजर का कोट शिखरसहित बड़े
से बैठ गया। पहिले सिन्ध नदी की सीमा पर जब लहरा वेग
उठता था, तब जल छः फ़ीट तक चढ़ता था, पर भूचाल होने
पीछे अठारह फ़ीट तक जल चढ़ा। सुन्दरी कोट और
पर जो लखपतगढ़ से उत्तर थे, समुद्र चढ़ आया। भूडोल
के बीत जाने पर भवनों की छतें और भीतों के कंगूरे
पड़ते थे। ऐसा जान पड़ता है कि भूचाल के कारण सि
नदी की पूर्वी सीमा में समुद्र सूखे पर इतना चढ़ आया कि
सहस्र वर्गात्मक मील धरती डूब गई। यद्यपि यह भूकम्प भया
नक हुआ और समुद्र भी चढ़ आया, पर कोट का एक शिखर ज्यों
का त्यों बना रहा। कोट के रहनेवाले मनुष्यों ने इसी शिखर
पर शरण ली और दूसरे दिन नावों पर चढ़ कर अपने प्राण
बचाये। भूकम्प के पीछे सुन्दरी गाँव के रहनेवाले लोगों ने साढ़े
पाँच मील की दूरी पर एक स्थान में जहाँ पहिले चैारस धरती
थी, एक लम्बा सा टीला पाया और उसका नाम अल्लहबन्ध
रक्खा। यह टीला सुन्दरी गाँव की धँसी हुई धरती के सम्मुख
पचास मील लम्बा और कहीं कहीं सोलह मील चैाड़ा है। सन
१८२८ ईसवी में बर्न्स साहब नाव पर चढ़ कर सुन्दरी गाँव के
को देखने गये थे; उन्होंने वहाँ केवल एक शिखर
हुई भीतों को जो दो तीन फ़ीट पानी के ऊपर

, देखा और जब भीत पर खड़े हो कर चारों ओर देखा तो ड्रहबन्ध नाम की धरती के टुकड़े को छोड़ कर सब जलमय खलाई पड़ा।

राबिनसन क्रूसो का इतिहास।

मेरा नाम राबिनसन क्रूसो है। सन् १६३२ ई० में यार्क नगर मेरा जन्म हुआ। मेरा पिता एक अच्छे कुल का था। पहिले ह हल नगर में रहा। वहाँ व्यापार से धनवान हुआ। फिर हाँ का व्यापार छोड़ कर यार्क नगर में आया और वहाँ उसने बिनसन नाम की एक कुलवती स्त्री से विवाह किया। उसने न पुत्र हुए। बड़ा लड़का अँगरेज़ी सेना का सेनापति हुआ र स्पेन देश के लोगों की लड़ाई में मारा गया। मैं नहीं जानता क मझला लड़का कहाँ चला गया और उसने क्या काम किया।

मैं अपने पिता का सब से छोटा पुत्र हूँ। बालकपन मेरा लाड़ बीता, इसीसे मैंने कोई काम करना न सीखा। पर युवा वस्था में मुझे विदेश जाने की बड़ी इच्छा हुई। मैं पाठशाला में भी नहीं गया, पर सामान्य लड़कों की नाईं मेरे पिता ने मुझे र ही पर पढ़ना लिखना सिखाया। पिता की इच्छा थी कि मैं काल्लत का काम करूँ पर मेरी अभिलाषा थी कि मैं किसी जहाज़ का मुखिया हो कर विदेश जाऊँ। मेरे माता पिता और मित्र आदिकों ने बहुत निषेध किया, परन्तु मेरी विदेश जाने की,

न भर उत्तम उत्तम पदार्थों का भोग करता है, परन्तु जब
सके ऊपर किसी प्रकार का दुःख पड़ता है तो उस समय वह
दास हो यही कहता है कि हाय, यदि मैं मध्यम श्रेणी का पुरुष
ता तो बहुत अच्छा होता। एक पण्डित ने भी परमेश्वर से यही
र्थना की थी कि हे परमेश्वर, तू मुझे न तो दरिद्री बनाइयो और
धनवान्, वरन् मध्यम दशा में रखियो।

इतना कह फिर पिता ने मुझसे कहा कि तुम भली भाँति
वचार कर देखो कि इस संसार में अधिक दुःख के भागी या तो
नवान् हैं या दरिद्री, किन्तु मध्यम श्रेणी का पुरुष अधिक दुःख
का भागी नहीं होता। क्योंकि धनी लोग प्रायः थोड़े दिनों में
रिद्री हो जाते हैं और दरिद्री सदा दुखी रहते हैं। धनी लोग
पने बड़े बड़े मनोरथ पूरे करने में अनेक प्रकार के क्लेश सह कर
रोगी हो जाते हैं और दरिद्री लोग अपने अत्यन्त परिश्रम द्वारा
भी अति आवश्यक पदार्थ और साधारण भोजन न पाकर क्लेश
या रोगादि से पीड़ित होते हैं। पर मध्यम श्रेणी के पुरुष की
ऐसी दशा कभी नहीं होती। इसे अच्छे अच्छे गुण, सब प्रकार
के सुख और सत्सङ्ग मिल जाते हैं। सुनो, परिमित व्यय, आनन्द,
स्वस्थता, सत्सङ्ग और इच्छानुसार सुख मध्यम दशाही में मिलते
हैं। मध्यम दशावाला सहज में काल बिता कर स्वतंत्र हो इस
भवसागर से पार हो जाता है। इसको दरिद्री या धनवान् की भाँति
शरीर व चित्त के क्लेशादिकों का दुःख नहीं व्यापता, क्योंकि
न तो इसे प्रतिदिन उचित आहार के न पाने की आशङ्का से दास

चा नीच की भाँति कर्म करना पड़ता है, न नाना प्रकार के का
मनोरथों के पूर्ण होने से उदास रहना पड़ता है, और न मह
वस्तु की लोभाग्नि से जलना ही पड़ता है। इसीसे व
अपने चित्त में शान्ति और विश्राम के पाता है, तथा इस सां
रिक वन में कडुए फलों को त्याग और मधुर फलों को ग्रह
कर इस जीवन रूपी वृक्ष की छाया में निवास पाता है, और नि
चित्त से अपने सुख का ध्यान करता हुआ प्रतिदिन अपनी वृ
करता है।

इतना कह कर मेरे पिता ने फिर स्नेहपूर्वक यह कहा
तुम चञ्चलता मत करो। तुम्हारी अवस्था से मुझे तुम्हा
स्वाभाविक गुण जान पड़ता है कि भविष्यत् में तुमको कि
प्रकार का दुःख न होगा। इसलिए तुम जान बूझ कर आप
दुःखसागर में कूद कर मत डूबो। धीरज धरो और देखो,
तुम्हारे लिए वही करूँगा जिसमें तुम्हारा कल्याण होगा। जि
मध्यम अवस्था, की मैंने तुमसे इतनी प्रशंसा की है, तुम उ
अवस्था के योग्य हो जाओगे। इस पर भी जो तुम सुख से अप
काल न काटो तो तुम्हारा अभाग्य है। सार यह है कि जि
बात से तुमको दुःख होगा उससे मैं तुमको सावधान किये दे
हूँ। अब मेरा कुछ दोष नहीं है। बस, बहुत कहने से कुछ ला
नहीं। सुनो, जो तुम यहाँ रह कर मेरी इच्छा के अनुसार का
करोगे तो सब प्रकार से तुम्हारा कल्याण होगा और उ
तुम मेरी बात न मान कर कहीं चले जाओगे तो तुम्हा

बड़ी हानि होगी । इसीसे मैं तुमको विदेश जाने की सम्मति नहीं देता । पर यदि तुम चले ही जाओगे तो परमेश्वर से तुम्हारे कल्याण के निमित्त प्रार्थना करता रहूँगा । देखो जैसे तुम विदेश जाने का हठ करते हो, इसी रीति से तुम्हारे बड़े भाई ने भी रणचातुरी सीखने के लिए बड़ा हठ किया था । मैंने उसको भी बहुत समझाया था, पर उसने मेरी बात न मानी और अन्त को उसी काम में वह मारा गया ! तुम निश्चय जानो कि जो तुम मेरी बात न मान विदेश आओगे तो ईश्वर कभी तुम्हारा भला न करेगा और जिस समय तुम्हारे ऊपर कोई आपत्ति आवेगी, उस समय कोई भी तुम्हारा सहायक न होगा, तब तुम्हें मेरी बातों का स्मरण होगा और तुम पछताओगे कि हाय, मैंने अपने पिता की बात क्यों न मानी ।

पिता ने ये सब बातें भविष्यवक्ता के समान कहीं, और उनको यह निश्चय नहीं था कि मैं बात ही बात में विदेश चला ही जाऊँगा । ऐसी बातें करते करते मेरे पिता की आँखों से आँसू बहने लगे, गद्गद् वाणी हो गई और बड़े स्नेह से उन्होंने कहा कि हाय, मैं अपने चित्त के दुःख का वर्णन नहीं कर सकता, पर यह कहता हूँ, कि जिस समय तुम पर कोई दुःख पड़ेगा और तुम्हें कोई सहायक न मिलेगा, उस समय तुम्हें बड़ा शोक होगा ।

इन बातों को सुन कर मेरी भी छाती भर आई, क्योंकि स्नेह की ऐसी बातों से किसकी छाती नहीं भरती ? तब मैंने

भी अपने मन में यही निश्चय किया कि अब जलयात्रा का विचा
छोड़ अपने पिता की आज्ञा मान कर स्वदेश ही में रहना उचि
है। किन्तु थोड़े ही काल में फिर मेरी दुर्बुद्धि लौटी और मैं
यह विचार किया कि अब पिता से कुछ न कहना और इनसे बि
कहे ही चले जाना ठीक है, जिसमें पिता मुझको रोक न सकें
ऐसा विचार कर मैं पिता के पास तो न गया, पर एक दिन
अपनी माता को प्रसन्न देख कर कहा कि माता ! मुझको ना
प्रकार के देशों के देखने की बड़ी इच्छा है। इस देश में मैं कु
काम नहीं कर सकता। और जो मैं कुछ काम भी करूंगा तो मे
चित्त भली भाँति न लगेगा। जो मैं पिता से आज्ञा लेकर जाऊँ
मेरा कल्याण हो, पर वे मुझे न जाने क्यों नहीं आज्ञा देते? मेर
अठारह वर्ष की अवस्था हुई। अब मैं व्यापार या वकालत क
काम नहीं सीख सकता। यदि वे मुझको सिखावेंगे भी तो
उतने काल तक ठहर नहीं सकूंगा। इससे यही उचित है कि
मुझको विदेश जाने की आज्ञा दें। जो मेरा मन विदेश में न लगे
तो मैं यहाँ आकर अपना काम सीखूंगा और जो मेरा समय विदे
जाने में जायगा, उसकी कसर मैं यहाँ आकर निकाल दूँगा।

यह सुन माता ने क्रोध से कहा कि तुम्हारे पिता से इस ब
के कहने की कुछ आवश्यकता नहीं है। क्योंकि वे तुम्हारे हा
[illegible] नहीं, वरन् तुम्हारे लाभ के साथी हैं। वे जिस
[illegible] होगी वही करेंगे, पर तुम्हारी हानि
कभी आज्ञा न देंगे। अभी इस बात को बह

दिन नहीं हुए कि उन्होंने विदेश जाने के विषय में तुम से क्या क्या बातें कही थीं। क्या तुम उन बातों को अभी भूल गये जो फिर विदेश जाने की इच्छा करते हो? जो तुम आपही अपने को नाश करने की इच्छा करते हो तो इसका उपाय कुछ नहीं है। मैं तुम्हारे बाप से तुम्हारी बात कहती, पर जिस बात में मैं सर्वदा तुम्हारी हानि ही देखती हूँ वह उनसे क्योंकर कहूँ। तुम निश्चय जानो कि जिस बात में पिता का सम्मति नहीं है, उसमें माता की सम्मति किस प्रकार हो सकती है? इससे मैं इस बात पर कभी सम्मत न होऊंगी।

यद्यपि उस समय मेरी माता ने पिता से इस बात का कहना स्वीकार न किया, तो भी पीछे से मैंने सुना कि उसने मेरी सब बातें पिता से कहीं और उन्होंने बहुत उदास और निरास हो साँस भर कर यह उत्तर दिया कि सुनो, जो तुम्हारा लड़का घर में रहेगा तो आनन्द से वह अपना समय काटेगा, और जो विदेश चला जायगा तो अत्यन्त दुःखी होगा। इससे मैं तो उसे विदेश जाने की आज्ञा कभी नहीं दूंगा।

इसके पीछे जिस काम के सीखने के लिए पिता मुझ से कहते थे और मेरी विदेश जाने की इच्छा जान कर भी मुझ को आज्ञा नहीं देते थे, इसीसे मुझसे और उनसे प्रायः झगड़ा होता था। इसी भांति एक वर्ष बीत गया। फिर तो मैं जिस जिस रीति से विदेश चला गया वह कहता हूँ।

एक दिन मैं किसी काम के लिए हल नगर में गया था।
मेरी इच्छा नहीं थी कि मैं वहां से कहीं चला जाऊँ। अ
एक मित्र से मेरी भेंट हुई। वह अपने बाप के जहाज़ पर लंड
नगर जाने को तैयार था। उसने मल्लाहों की भाँति मुझे फुसला
कर कहा कि जो तुम हमारे साथ चलो तो तुम्हें कुछ व्यय न करना
पड़ेगा और आनन्द से हमारे साथ लंडन नगर देख आओगे।
मेरा मन तो उद्यत हो ही रहा था; इसलिए उस समय न तो मैंने
अपने माता पिता के स्नेह वा सम्मति का विचार किया, न उनको
कुछ समाचार भेजा, और न इस बात को सोचा कि जहाज़ पर
जाने से मेरी क्या दशा होगी। बस, चट मैं जहाज़ पर जा बैठा
और माता-पिता की आज्ञा न मानने के कारण जो कुछ आपत्तियाँ
मुझे झेलनी पड़ीं वे अकथनीय हैं।

नीति-शिक्षा *

आज्ञा पालन

युवा पुरुषों का सब से पहिला धर्म और कर्म यह है कि वे
बड़े लोगों की आज्ञा मानें अर्थात् जिस काम के करने से वे रोकें
उसे न करें और जिसके करने की वे आज्ञा दें उसे मन लगा कर
पूरा करें। आज कल स्वतन्त्रता की चर्चा बहुत कुछ सुनाई देती
है और निस्सन्देह यह बहुत अच्छी वस्तु है और इसी कारण

* ब्लाकी कृत सेल्फ़ कल्चर के आशय पर बाबू श्यामसुन्दरदास,
बी० ए०, लिखित।

इसे सब लोग चाहते और इसका आदर करते हैं। परन्तु यह बहुत आवश्यक है कि हम लोग यह भली भांति से समझ जावें कि स्वतन्त्रता किसे कहते हैं। स्वतन्त्रता का यह अर्थ नहीं है कि बिना बड़ों की बातों पर ध्यान दिये जो मन में आया सो कर बैठे। इसका अर्थ केवल यही है कि प्रत्येक मनुष्य स्वाभाविक कामों के करने में समाज के दूषित या हानिकारक बन्धनों से बचा रहे। क्योंकि समाज को लाभ पहुंचाने वाली स्वतन्त्रता निस्सन्देह बहुत अच्छी वस्तु है, और इससे मनुष्य को भी अधिक लाभ होता है। यह मनुष्य को काम करने का स्थान दे देती है, और यह भी कहती है कि क्या काम करना होगा और कैसे करना होगा। बस, उसके साथ संसार में जितने काम हैं वे सब स्वतन्त्रता के सहित बँधे हुए हैं। नियम के अनुसार काम करने से स्वतन्त्रता दूर भागती है और बन्धन या जकड़ते हैं। यह कहना ठीक नहीं; क्योंकि नियमों के अनुसार कामों को करना ही उनकी स्वतन्त्रतापूर्वक उचित रीति से करना कहा जाता है। ये नियम जिन्हें मानना सब का धर्म है; ऐसे नहीं होते जिन्हें प्रत्येक मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार मान ले, वरन् ये नियम ऐसे होते हैं जिन्हें दूसरे लोगों ने समाज के हित अर्थात् सब लोगों के सुख, भलाई और उपकार के लिए मान लिये हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि जो मनुष्य किसी समाज की भलाई चाहता है, और जिसकी यह इच्छा है कि समाज बना रहे; उसका सबसे पहिला धर्म यह है कि बड़ों की आज्ञा का मानना

सीखे। जगत् में जितने प्रकार के कार्य हैं सबमें इस धर्म के अनेक उदाहरण मिलेंगे; यहाँ तक कि कोई मनुष्य चाहे किसी प्रकार से अपना निर्वाह करता और समय काटता हो, उसे भी इस धर्म का अवश्य पालन करना पड़ता है। मनुष्य को अपने विषय में भी केवल उतनी ही स्वतन्त्रता उचित है जिससे समाज को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे। ऐसी स्वतन्त्रता को किसी से छीन लेना मानो उसे मनुष्यत्वहीन बनाना है। कोई मनुष्य जैसा भोजन चाहे करे, जिस प्रकार से चाहे नहाये और जैसे चाहे सोये; परन्तु वह सब लोगों से अपनी इच्छा के अनुसार बर्ताव नहीं कर सकता; अर्थात् वह जिसे चाहे उसे मार नहीं सकता वा जिस किसी की वस्तु चाहे उसे छीन कर ले नहीं सकता है। ऐसी अवस्था में उसे समाज के नियमों को मानना ही पड़ेगा; क्योंकि बिना ऐसा किये समाज बनाही नहीं रह सकता। इसलिए प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि स्वतन्त्रता की सीमा उल्लंघन न कर उन नियमों और बन्धनों को मानें जिनका मानना समाज के सब के लोगों के लिए आवश्यक है। जो मनुष्य समाज में सबसे बड़ा माना जाता है और जिसका आदर सब लोग सब से अधिक करते हैं; उसे समाज के नियमों को भी सब से अधिक मानना पड़ता है। मनुष्य के शरीर में सिर सब से श्रेष्ठ वस्तु है, उसको भी शरीर के उन साधारण नियमों को मानना पड़ता है जिन्हें शरीर [illegible] अंग मानते हैं। जैसे अधिक परिश्रम करने पर नींद का मनुष्य के शरीर का साधारण नियम है, और इसे सिर को

भी उतना ही मानना पड़ता है जितना पैर मानता है। नियम के विरुद्ध मनमाना काम कर बैठना एक द्वार की दरार के समान है जिसको यदि ज्यों का त्यों छोड़ दिया जाय तो काल पाकर यह एक बड़ा सा बिल हो जायगा। ऐसे ही समाज के नियमों के विरुद्ध किसी कार्य्य को करने देना या करते रहना माना समाज को नष्ट करना है। बड़े बड़े वीर पुरुषों और सेना के नायकों में इस बात ही की बड़ी प्रशंसा की जाती है कि वे आज्ञा का देना और मानना इन दोनों बातों को जानते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आज्ञा मानने और आज्ञा देने में बड़ा भेद है जो क एक दूसरे से विरुद्ध है, पर सच बात तो यह है कि एक के साधने से दूसरा आप आ ता है, क्योंकि वह मनुष्य, जिसे जन्म भर केवल आज्ञा ही ने की बान पड़ गई है, और जसने आज्ञा पालन करना सीखा ही नहीं है, वह यह नहीं जान सकता कि आज्ञा की सीमा कहाँ तक है। युवा पुरुषों को इस आज्ञा-पालन के गुणों को बड़े ध्यान से सीखना चाहिए क्योंकि छोटी ही अवस्था में इसकी अधिक शोभा रहती है। बालकों को सब कामों को केवल इसी लिए करना चाहिए कि अपने से बड़े लोग उसके करने की आज्ञा देते हैं। स्वामी अपने सेवकों की और किसी बात से इतना प्रसन्न नहीं होता जितना इस बात से कि वे उसकी आज्ञा के अनुसार सब कामों को समय पर ठीक ठीक कर देते हैं, और इसमें कुछ आश्चर्य भी नहीं है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य के अपने कामों को ठीक समय पर सचाई के साथ करने से ही सारा समाज आनन्द और

सुख-चैन में बना रहता है। आज्ञा-पालन न करने से ...
हानियाँ होती हैं उतनी पूर्ति पण्डिताई वा चतुराई से नहीं
सकती। घड़ी के ठीक चलने से समय का पता लगता है।
वह ठीक न चले तो कोई भी ठीक समय नहीं जान सकता।
ही जिस मनुष्य के लिए तुम काम करते हो, उसे यदि तुम ठी
समय पर पूरा न कर दोगे तो तुम उसे ठीक न चलनेवाली घड़ी
के समान धोखा देते हो। किसी मनुष्य के लिए इससे बढ़ कर उत्त
दूसरी प्रशंसा नहीं हो सकती कि लोग उसे कहें कि ह मनुष्य प
सदा उस काम को नियम से करता है जिसके करने का भार
वह अपने ऊपर लेता है और जो सदा उसी समय पर पहुँचता
है जब कि उसके आने की आशा की जाती है।

आलस्य।

युवा पुरुषों के लिए इससे अच्छा कोई दूसरा उपदेश नहीं
है कि "कभी आलस्य न करो"। यह एक ऐसा उपदेश है कि
जिसके लिए इच्छा को दृढ़ करने की अधिक आवश्यकता होती
है। लोगों को इस बात का ध्यान बालकपनही से रखना चाहिए
कि समय व्यर्थ न जाय और यह तभी हो सकता है जब कि सब
काम नियम से और उचित समय पर किये जायँ। जो युवा पुरुष
नित्य किसी काम में कुछ समय लगाता है वह कभी चूक नहीं
सकता। रहा इस बात का निर्णय करना कि किस कार्य्य में कितना
समय लगाना चाहिए। यह उस कार्य पर और उसके करनेवाले

-नेभर है। इसमें आवश्यक केवल इतना ही है कि चाहे कितना
-ाड़ा समय किसी कार्य में क्यों न दिया जाय पर वह बराबर
ः ही हुआ करे, उसमें किसी प्रकार की बाधा न पड़नी चाहिए।
॥ मान लिया जाय कि प्रति दिन एक काम के लिए एक घंटे
ं समय लगाया जा सकता है। अब पहिले पहिल तो यह बहुत
ोा जान पड़ेगा, परन्तु वर्ष के अन्त में इसका फल अधिक देख
ा। जैसे एक छोटा सा बीज देखने में कितनी छोटी वस्तु
ार उसे बो देने से और समय पर पानी देने से वह एक बड़ा
ापेड़ हो जाता है और उसमें फल फूल लग जाते हैं। एक
्य को मन में स्थिर करके उसीके अनुसार प्रति दिन नियम के
। काम करने ही से केवल वह काम पूरा हो सकता है। किसी
। के करने में एक साथ ही शीघ्रता करने लगना और फिर
छोड़ कर दूसरे काम में लग जाना ऐसा ही व्यर्थ और निष्फल
सा आलस्य का करना है। एक आलसी मनुष्य उस घरवाले
मान है जो कि अपना घर चोरों के लिए खुला छोड़ देता
और वह पुरुष बड़ाही भाग्यवान् है जो यों कहता है कि
े व्यर्थ के कामों के लिए छुट्टी नहीं है, क्योंकि मैं बिना किसी
दयक काम के समय को नष्ट नहीं कर सकता; प्रयोजन बिना
कोरी बक बक अच्छी नहीं लगती, काम में लगे रहने से मुझे
प्रसन्नता होती है, और जब मैं अपना काम पूरा कर लेता
ो जानता हूँ कि किस रीति से एक काम के अनन्तर विश्राम
के फिर दूसरे काम में लग जाना होता है"। ऐसे ही मनुष्य

उन्नति कर सकते हैं। आलस्य के दूर करने का बहुत ही
उपाय यह है कि जिससे यह बात भली भाँति से समझ ली
कि बिना हाथ पैर हिलाये संसार का कोई काम नहीं हो स
संसार के विषय में लोग जो चाहें सो कहें परन्तु यह स्थान
को व्यर्थ नष्ट करने का नहीं है। ऐसे स्थान में जहाँ पर कि
लोग अपने अपने काम-काज में लगे हुए हैं, वहाँ आलस्य
से केवल नाशही होगा, लाभ कभी नहीं हो सकता। किसी
का कथन है कि "जीवन थोड़ा है, गुण अनन्त, अवसर ह
निकले जाते हैं, परख पूर्ण रीति से हो नहीं सकती और व
के विषय में बुद्धि स्थिर नहीं है"। बस प्रत्येक मनुष्य
उपदेशों पर ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से वह
सचेत बना रहेगा और अपने अमूल्य समय को आलस्य
नष्ट न करेगा।

दृढ़ता।

किसी काम में दृढ़ता के साथ लगे रहने से ही मनुष्य
में यथार्थ गौरव पा सकता और सब कामों को सफलता
कर सकता है। परन्तु वह मनुष्य किसी योग्य नहीं है जो
कामों को मन लगा कर दृढ़ता के साथ न करता हो। प्रसि
रेज़ कवि वर्डस्वर्थ अपनी यात्रा के वर्णन में यों लिखता है कि
आकाश में मेघ दीखते और मुझे पहाड़ के ऊपर जाना होता
अपने विचार से कुछ इस कारण न पलटता कि पहाड़

र यदि पानी बरसने लगेगा तो मुझे कष्ट होगा, वरन् यह सोच
; अपने विचार के अनुसार दृढ़ता के साथ कार्य न करने से
रित्र में धब्बा लगेगा। बस मैं आँधी पानी की कुछ भी आशंका
ता ग्रैार पहाड़ पर चला जाता"। यह कैसी बुद्धिमानी का
: है। हम ऐसे संसार में नहीं रहा चाहते जहाँ कि मनुष्य
थोड़ी सी तुच्छ बातों से डर जायँ, क्योंकि संसार में अगणित
ाइयाँ हैं जिनको दूर करके अपने काम के करने ही में बुद्धि-
है। एक समय कोई मनुष्य एक ऊँचे पहाड़ पर चढ़ने लगा
ञब वह उस स्थान के निकट पहुँचा कि जिसे वह उस पहाड़
ाटी समझे हुए था या जहाँ तक जाने का उसका विचार
ो उसे विदित हुआ कि मुख्य चोटी अभी दो मील ऊपर है
ग्रागे का मार्ग बड़ा ऊँचा नीचा ग्रैार बीहड़ है, जिस पर थक
के कारण वह कठिनता से चल सकता था; पर यह
ऐसी बात न थी जिससे वह पहाड़ की चोटी तक न जा
। सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि पहाड़ की चोटी पर
ा गिर रहा था ग्रैार सूर्य्य के ग्रस्त होने में केवल एक घंटा
था। यह देख कर वह शीघ्रता से नीचे उतर ग्राया। पर देखो
रे दिन वह क्या करता है? सवेरा होते ही वह पहाड़ पर चढ़ने
। ग्रैार ग्रन्त में उसकी मुख्य चोटी पर जा बैठा। ऐसेही
ष्य जिस काम को अपने हाथ में लेते हैं, उसे पूरा करके छोड़ते
सलिए कभी किसी कठिनाई को देख कर तुम साहस को
ोड़ो ग्रैार विशेष कर जब कि तुमने अभी उस काम का आरम्भ

सहायता के बिना चलना सीखलो उतनाही अच्छा है, क्योंकि दूर न चलते चलते ही तुम्हें मार्ग में दलदल, जङ्गल और मिलेगा। ऐसी अवस्था में सोचो तो सही कि उस मनुष्य दशा होगी जो केवल साइन बोर्ड ही के सहारे से चलता ऐसेही यात्री के समान वे युवा पुरुष हैं जो दूसरों के सहारे अपने सब काम किया चाहते हैं इसलिए तुम्हें उचित है कि अपने मन की दृढ़ता के सहारे से सब काम करो, नहीं तो हुए पथिक के समान तुम्हें भी दूसरों का आसरा देखना , और यदि तुम्हारा सहायक तुम्हारे ही समान भूला या हुआ है, तो सोचो तो सही कि तुम्हारी क्या दशा होगी। अपनी कमर कसो और इस बात को सिद्ध करके दिखा कि जिस भांति चलना चलने से, कूदना कूदने से और पटा पटा खेलने से आता है। वैसेही सज्जन की भांति रहना, अवसर पड़े तब तब सज्जनता के साथ काम करने ही से है। यदि पहिली बार अवसर पड़ने पर तुम चूक गये, के साथ तत्पर न रहे, तो दूसरी बार के लिए तुम अधिक हो आओगे और जो कहीं दूसरी बार भी तुम चूके तो कि अब तुम्हारे किये कभी कुछ नहीं हो सकेगा और दूसरे नीच लोगों के समान हो जाओगे। जैसे जो मनुष्य सीखता है, वह यदि सदा छिछले पानी में तैरेगा तो पड़ने पर, या गहरे पानी में ऊंची ऊँची लहरों के उठने उसका साहस छूट जायगा और वह अपने प्राण न बचा

सकेगा। ऐसे ही तुम अपने साहस को कभी कम न करो। पाप और पुण्य के उपदेश ही तुम्हारे जीवन को पवित्र नहीं सकते किन्तु, हाँ उन उपदेशों के अनुसार वर्ताव करने से निस्सन्देह अच्छे हो सकते हो। जैसे यात्रा में एक के पीछे मील का पत्थर पीछे छूटता जाता है, उसी भाँति अपने जीव यदि तुम एक के पीछे दूसरी खोटी बातों को न छोड़ते जा अन्त में अवसर निकल जाने पर पछताने और सिर पटकने के रिक्त और कुछ तुम्हारे हाथ न आवेगा।

वंशनगर का व्यापारी*

वंशनगर में शैलाक्ष नाम का एक विदेशी व्यापारी रहता वह उस नगर के व्यापारियों को काम पड़ने पर अधिक रुपये उधार देने के कारण बड़ा धनवान् हो गया था। परन्तु इतना निर्दई था कि अपने ऋणियों को बड़े बड़े दुःख उन्हें पिटवाता और जैसे होता उनसे अपनी कौड़ी कौड़ी लेता था। इसीसे उस नगर के दयावान् सुजन लोग बहुतही अप्रसंन्न रहते और सदा उसकी निन्दा किया उसी नगर में अनन्त नामक एक दयावान् व्यापारी भी रहता जो समय समय पर दीन हीन लोगों को उनके दुःख दूर

---

* लैम्बस टेल्स के आंशय पर पंडित किशोरीलाल गोस्वामी

भट रुपये उधार दे देता और उससे एक कौड़ी भी ब्याज
लेता था। अनन्त के ऐसे दयावान् सुजन को देख कर दुष्ट
तर बराबर जला करता और अनन्त भी उस दुष्ट विचार से
मानि रखता था। जब कभी दाई में उन दोनों की भेंट
तो अनन्त दीलाल को उसके निर्दय बर्ताव पर भली भाँति
ति कोरी फटकार सुनाता जिसे निर्लज्ज दीलाल चुपचाप सह
ा, और वह मनही मन सोचता कि किसी भाँति अनन्त मेरे जाल
ंसे तो इससे अपना भरपूर बदला लूं ।

उसी नगर में अनन्त का अभिन्न हृदय मित्र वसन्त नामक एक
ति रहता था। उसने अपव्यय के कारण अपना सब धन नष्ट
ः दिया था, पर जब कभी उसे कुछ रुपयों की आवश्यकता होती
वह अनन्त के पास आता था। वह भी निष्कपट मन से वसन्त
ी बराबर तन मन और धन से सहायता किया करता और उसे
ी रीति से रुपये देता कि दूसरों को अनन्त और वसन्त के धन
कुछ भी भेद नहीं जान पड़ता था।

एक दिन अनन्त ने अपने मित्र वसन्त को बहुत उदास देख
र उसकी उदासी का कारण पूछा। तब वसन्त ने कहा कि
प्रिय मित्र ! यहाँ से थोड़ी दूर पर बिल्वमठ नामक स्थान में
क बड़ी सुन्दरी कन्या है । उसका पिता बहुत सा धन और
सम्पत्ति (ज़मींदारी) को छोड़ मरा है। मैं चाहता हूँ कि उस
रूपवती सुन्दरी से विवाह कर फिर पहिले की भाँति धनवान्
ो जाऊँ, किन्तु मेरे पास इस समय इतना धन नहीं है कि मैं रूप

में पार्वती, गुण में सरस्वती और धन में साक्षात् लक्ष्मी सी
से विवाह करने के योग्य अपना रूप या बाहरी तड़क भड़क
सकूँ। इसलिए मैं चाहता हूँ कि यदि तुम इस समय तीन
रुपये मुझे उधार दो तो वेखटके मेरा काम हो जाय। क्योंकि
मैं उसके पिता के जीते वहाँ जाता था, तो वह कन्या ऐसी
भरी चितवन से मेरी ओर निहारती थी कि मुझे निश्चय
है कि वह अवश्य मुझे अपना पति बनावेगी और फिर मैं
भारी धनाढ्य हो जाऊँगा"। अनन्त ने उत्तर दिया—"मित्र!
समय तो मेरे पास इतने रुपये नहीं हैं, परन्तु थोड़े ही दिनों
मेरे व्यापार सम्बन्धी वस्तुओं के अर्णवपोत आजायँगे,
दिनों के लिए किसीसे रुपये उधार मिल जायँ तो अच्छी
है। चलो, शैलाक्ष के पास चलें, यदि वह लालची थोड़े दि
के लिए मुझे इतने रुपये उधार दे दे तो तुम्हारा मनोरथ सि
हो जायगा"।

यह सोच दोनों मित्रों ने शैलाक्ष के पास जाकर अपने आ
का प्रयोजन कहा। यह सुन कुटिल शैलाक्ष मनही मन बड़
प्रसन्न हुआ, क्योंकि वह चाहता था कि किसी भाँति अनन्त मे
चंगुल में फँसे तो मैं अपने जी की पुरानी कसक निकालूँ। परन्
प्रकट में वह रुखाई से कहने लगा—"क्यों जी अनन्त! तुम आर
होकर मुझ अनार्य से घृणा करते हो, मेरी जाति को तुच्छ और
हीन समझते हो, तुम किसी से सूद नहीं लेते, इसलिए मुझे
बराबर लालची और सूदख़ोर कह कर खोटी खरी कहा करते

था, कई बार तुमने मेरे जातिवालों के सामने मुझे नीचा दिखाया, व्यापारियों में मेरा सिर नीचा कराया, मुझे व्याज लेने पर धिक्कारा, और अनेक बार मुझे नास्तिक और कटहा कुत्ता कह कर कुत्ते की भाँति दुर्दुराया, पर मैंने धीरज के साथ तुम्हारे सब अपमान के सिर झुका कर सह लिया। फिर जो तुम मेरी सहायता चाहते हो और मुझ से तीन सहस्र रुपये उधार लेने आये हो? क्यों महाशय! कहीं कुत्ते के पास भी रुपये रहते हैं कि वह उधार दे? या मैं एक दीन की भाँति गिड़गिड़ा कर कहूँ कि श्रीयुत माननीय महोदय! बुध के दिन आपने मुझे कुत्ता कह कर पुकारा और मेरे कपड़ों पर थूका था, इस कृपा के बदले में मैं तीन सहस्र रुपये से आपकी सहायता करता हूँ"।

अनन्त ने उसकी बातें सुनकर कहा—"सुनो शैलाक्ष? मैं फिर भी तुम्हारे खोटे चलन की सहस्र बार निन्दा करूँगा और तुम्हें धिक्कारूँगा। किन्तु अब यदि तुम्हें ऋण देना हो तो मुझे अपना शत्रु समझ कर दो, न कि मित्र जान कर। यदि ठीक मिती पर मैं तुम्हारा ऋण न चुका सकूँगा तो जो दण्ड तुम चाहोगे उसे प्रसन्नता से अपने ऊपर लूँगा"।

शैलाक्ष अपने मन का भाव छिपा कर बोला—"अस्तु, जो कुछ तुम ने मेरे साथ खोटे बर्ताव किये उन सभों को भूल कर मैंने तुम्हें बिना व्याज के तीन सहस्र रुपये दूँगा जिसमें तुम मुझे अपना मित्र समझो, पर कौतुक के हेतु तुम्हें उस पत्र पर

हस्ताक्षर कर देना होगा। जिस पर यह लिखा रहेगा कि
मिती पर मैं सब रुपये न चुका दूँगा तो ऋणदाता मेरे श
में से जहाँ से चाहे आध सेर मांस काट ले'।

शैलाक्ष की दुष्टता भरी बातों को सुन कर बसन्त ने
पत्र पर हस्ताक्षर करने से अनन्त को बहुत रोका और
पर उसने एक न माना और शैलाक्ष के लिखे हुए स्वीकार
हस्ताक्षर कर, रुपये ले, बसन्त के हाथ दिये। उसने सोच लि
था कि तब तक मेरे तीनों पोत आ जायँगे जिससे मिती पूजने
पहिले इसके सब रुपये चुकते कर दिये जायँगे।

वह धनाढ्य की लड़की जिसका नाम पुरश्री था, वं
के पास बिल्वमठ नामक स्थान में रहती थी। उससे विवाह
के लिए बसन्त अपने मित्र गिरीश को साथ ले बड़े ठाठ बाट
उसके घर जाकर उसका पाहुना हुआ। थोड़े दिनों में दोनों
पट गई और पुरश्री ने बसन्त को अपना पति बनाना नि
कर लिया।

मन मिलने पर एक दिन बसन्त ने अपनी भावी प
पुरश्री से अपनी सारी दशा जता दी और यह भी कहा
"प्यारी, अब मेरे पास केवल उच्च वंश और पदवी के अतिरि
और कुछ भी नहीं रहा"। पुरश्री जो अपने भावी पति के
पर रीझ कर लट्टू हो रही थी, बड़ी नम्रता और लज्जा से क
लगी—"हे प्यारे! यह आप क्या कहते हैं? यदि मैं जितना रूप
और धन अब रखती हूँ, इससे सहस्र गुणा अधिक रूप और

न रखती, तो भी आप के से सज्जन और सब गुनआगर नागर की पत्नी बनने के योग्य न होती। क्योंकि आपके अतुल और महान् गुणों के आगे मेरा यह तुच्छ रूप और धन किस गिनती में है? प्राणनाथ! मैं केवल एक भोली और अल्हड़ लड़की हूँ, तो भी निरी बद्धी नहीं हूँ कि आप की भली शिक्षाओं को ग्रहण करने और उनके द्वारा सुधरने के योग्य न होऊँ। प्रियतम! मैं आप की आज्ञाकारिणी दासी हूँ। केवल मेरा धन और भूमि ही नहीं, वरन् यह शरीर भी अब आप का हो चुका। कल तक इन सब ऐश्वर्य, अर्थात् बग्घी, घोड़े, दास, दासी, भवन इत्यादि की स्वामिनी मैं थी; पर आज इस विवाह मुद्रिका के साथ अपने शरीर-सहित इन सब वस्तुओं को आप को अर्पण किये देती हूँ। ऐसे नम्र और मधुर वचन कह कर उसने बड़े चाव से अपने हाथ की अँगूठी उतार कर बसन्त को पहिना दी, और बसन्त ने भी उस प्रेमवती के शील स्वभाव की बहुत कुछ प्रशंसा कर उसकी अँगूठी ग्रहण की और यह प्रतिज्ञा की कि जीते जी इसे अपनी अँगुली से कभी अलग न करूँगा।

जब उन दोनों में ऐसी स्नेह और प्रीति की बातें हो रही थीं, तब बसन्त के मित्र गिरीश ने कहा कि" मित्र! लीजिए आप का तो विवाह ठहर गया, अब मुझे अनुमति हो तो मैं भी इसी समय अपना विवाह कर डालूँ "बसन्त ने प्रसन्न हो कर कहा—अच्छी बात है, यदि तुमने कोई दुलहिन ठहराई

हो तो निःसन्देह कर लो"। गिरीश ने कहा—मेरे मन में मेरी स्वामिनी की सहेली नरश्री गड़ गई है और बड़ी बड़ी नकलें करने पर इसने वचन भी दिया है कि यदि मेरी स्वामिनी का गठ-जोड़ा तुम्हारे मित्र के साथ होगा तो मैं भी तुम्हारी घरवाली बनूंगी। यह बात सुन कर बसन्त और पुरश्री दोनों बड़े प्रसन्न हुए और पुरश्री ने मुसकुरा कर अपनी सहेली से पूछा कि "क्या यह बात सच है"? इस पर उसने लज्जा से अपनी आँखें नीची कर के केवल इतना ही कहा कि "हाँ"। यह सुन पुरश्री और बसन्त दोनों ने अपनी पूरी प्रसन्नता प्रकट की जिससे गिरीश और नरश्री का सम्बन्ध भी उसी समय पक्का हो गया।

ये दोनों प्रेमी अपनी अपनी भावी पत्नियों के साथ आनन्द की बातें कर रहे थे कि इतने ही में एक दूत ने आकर अनन्त का पत्र बसन्त के हाथ में दिया। उस पत्र के पढ़ते ही बसन्त की बुरी दशा हो गई, उसके मुख का रङ्ग फीका पड़ गया, ख़ुशी के बदले में उदासी छा गई और कान्ति बिगड़ गई। पुरश्री अपने प्रियतम की ऐसी सोचनीय दशा देख कर बहुत घबराई और बार बार पूछने लगी कि "इस पत्र में क्या लिखा है"? इस पर बसन्त ने अपना और अनन्त का सारा वृत्तान्त कह सुनाया और वह पत्र पुरश्री के हाथ में दिया। उसने भी पढ़ा और उसकी भी वही दशा हुई जो बसन्त की हुई थी। उस पत्र में केवल यही लिखा था—

"प्रिय मित्र वसन्त !

मेरा धर्णवपोत डूब गया और मैंने शैलाक्ष को जो स्वीकार-पत्र लिख दिया था उसकी मिती पूज गई। अब मैं पत्र में लिखी हुई प्रतिज्ञा के पूरी करने पर कदापि जीता न बचूँगा, क्योंकि अब वह मेरे शरीर में से जहाँ से चाहे आध सेर मांस काट सकता है। अस्तु इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं है, पर मरने के पहिले मैं एक बार तुम्हारा मुख देखा चाहता हूँ। यदि मेरे लिए तुम्हारे विवाह के आनन्द में कोई विघ्न न पड़े तो आओ। मेरा पत्र अपनी प्रेयसी को न दिखलाना।

तुम्हारा अभिन्नहृदय मित्र,

"अनन्त"

पत्र को पढ़ कर पुरश्री ने कहा—"प्यारे, विवाह की सब रीति अभी समाप्त कर डालिए जिस में मेरे सब धन पर आप का शास्त्रा-नुसार भी पूरा अधिकार हो जाय। फिर चाहे उस ऋण को बीस गुने रुपये देकर चुकाइए किन्तु यह कभी न होगा कि आप के मित्र का एक बाल भी बाँका हो। वसन्त ने यह बात मान ली और झट पुरोहित के सामने पुरश्री का वसंत के साथ और उसकी सखी नरश्री का गिरीश के साथ विवाह हो गया। फिर वे दोनों मित्र बड़ी घबराहट के साथ शीघ्र बंदरनगर पहुँचे जहाँ अनन्त ऋण के कारण बन्दीगृह में पड़ा हुआ था। वसन्त ने शैलाक्ष को बहुत समझाया और मूल धन से बीस गुने रुपये देने स्वीकार किये, पर स्वीकार-पत्र की मिती बीत जाने से दुष्ट शैलाक्ष ने उसकी

वादी प्रतिवादी (शैलाक्ष और अनन्त) का नाम धाम पूछ स्वीकार-पत्र को देखा जिस पर हस्ताक्षर करना अनन्त ने स्वीकार किया । जब पुरश्री ध्यानपूर्वक स्वीकारपत्र देख रही थी, तब; वसन्त ने उससे प्रार्थना की कि ऐसा उपाय हो जिसमें मेरे मित्र के प्राण बचें, मैं ऋण से बीस गुने रुपये देने को तत्पर हूँ । इस पर पुरश्री ने कहा—"मिती बीत गई, अब वंशनगर का न्याय शैलाक्ष को आध सेर मांस काट लेने से किसी प्रकार नहीं रोक सकता; किन्तु हाँ, यदि यह व्यक्ति दया करे तो अनन्त का बचना सम्भव है" । इतना कह कर पुरश्री ने फिर कहा—"सुनो शैलाक्ष! दया-धर्म सबसे बढ़ कर है। दया ऐसी वस्तु है कि जिसमें आग्रह की कुछ आवश्यकता नहीं । यह जल-धारा की भांति आकाश से पृथ्वी पर गिर कर दोनों को (जो दया करता है उसको और जिस पर दया की जाती है उसको) लाभ पहुँचाती है । यह महानुभावों की अधिकतर शोभा बढ़ाती और यही मंडलेश्वरों के मुकुट से भी अधिक शोभायमान है। राजदण्ड केवल सांसारिक बल प्रकट करता है जो कि आतङ्क और तेज का चिह्न है और जिससे लोगों के चित्त पर राजेश्वरों का भय छा जाता है, किन्तु दया का प्रभाव राज-दण्ड की अपेक्षा कहीं बढ़ कर है। यह ईश्वर का साक्षात् स्वरूप है, अतएव पृथ्वी पर राजमुकुट की उतनी शोभा नहीं है जितनी दया की है। जिस मनुष्य में जितनी अधिक दया है उसमें उतनाही अधिक ईश्वर का अंश समझना चाहिए । इस लिए हे शैलाक्ष! तू केवल न्यायही न्याय पुकार रहा है, पर

निश्चय जान कि केवल न्याय ही के भरोसे पर हम लोगों में कोई भी मरने के पीछे मुक्ति होने की आशा नहीं कर सकता, जब तक उसने दूसरे पर दया न की हो। हम लोग ईश्वर से दया के लिए प्रार्थना करते हैं, पर स्मरण रक्खो कि हम पर कदापि उसकी दया न होगी जब तक हम लोग अपने भाइयों पर दया न करें। मैंने इतना तुम्हारे न्याय के आग्रह को हटाने के लिए कहा है। परन्तु यदि तुम न मानोगे तो वंशनगर की विचार-सभा तुम्हें आध सेर मांस काटने की आज्ञा अवश्य देगी"।

वकील की वक्तृता सुन कर सबका हृदय भर आया और सब उसकी प्रशंसा करने लगे; पर निष्ठुर वज्र-हृदय दुष्ट शैलाक्ष का पत्थर सा हृदय तनिक भी न पसीजा। वह अपने हठ से न हटा और बराबर न्याय ही न्याय पुकारने लगा। बसन्त ने तीन गुने रुपये देने को कहा और लोगों ने भी उसे बहुत कुछ समझाया, पर उसने एक न सुना। तब पुरश्री ने कहा—"अब तुम्हें व्यवस्थापत्र के अनुसार आध सेर मांस काटने से न्यायसभा किसी प्रकार नहीं रोक सकती। कहाँ है तुम्हारी छुरी और तुला?" शैलाक्ष यह सुन मारे प्रसन्नता के उछल पड़ा, तथा छुरी और तुला ले वकील के सामने जाकर उसकी बड़ी प्रशंसा करने लगा कि वकील क्या हैं मानों साक्षात् धर्मराज न्याय करने के लिए स्वर्ग से उतर कर आये हैं। पुरश्री ने शैलाक्ष से कहा—"अच्छा एक चिकित्सक को भी बुला लो कि घाव को ढाँक कर उसके रुधिर को

मा बन्द कर देगा"। इस पर शैलाक्ष बोला—"देखा मैं नहीं
ने का, क्योंकि यह बात स्वीकारपत्र में नहीं लिखी है"। पुरधी
ने तो फिर तुम आध सेर मांस काट सकते हो"। आज्ञा
ते ही राक्षस शैलाक्ष प्रसन्नता के मारे मांस काटने को आगे
ा और न्याय-सभा में चारों ओर से हाहाकार मच उठा,
ा के मुंह पर गहरी उदासी छा गई और सब कोई आंखों में
सू भर कर कहने लगे कि "हाय, बिचारे बसन्त का जीवन दाम
: और शेष है"।

शैलाक्ष ज्योंही बसन्त के हृदय में छुरी चुभोना चाहता था कि
ने रोक कर पुरधी ने कहा "शैलाक्ष! तनिक ठहर जाओ
र सुनो; इस स्वीकारपत्र में लोहू की एक बूंद भी देना नहीं
गया है, केवल आध सेर मांस (बिना लोहू के) तुम निःसन्देह
ट सकते हो, वह रत्ती भर भी अधिक या न्यून न हो; परन्तु
स काटने में यदि एक बूंद रुधिर भी इसके शरीर से निकला
ो तुम्हारी सब सम्पत्ति छीन ली जावगी और तुम्हें शूली दे दी
ायगी"। शैलाक्ष ऐसी विचित्र युक्ति सुन कर घबरा गया और
भी रंग कर बोल उठा कि "अच्छा मेरे रुपये ही मुझे दिला दिये
ायें, मुझे मांस काटने से कोई प्रयोजन नहीं है"।

इस पर न्यायसभा के न्यायाधीश और सब छोटे बड़े वकील
ी प्रशंसा करने और शैलाक्ष को धिक्कारने लगे। बसन्त ने देखा
क मेरे मित्र के प्राण बच गये और शैलाक्ष भी रुपये लेने पर
म्मत हो गया, तो झट उसने शैलाक्ष से पुकार कर कहा कि लो

ये रुपये पड़े हैं, गिन लो"। इस पर पुरश्री बोली—"ठहरो,
इसे कुछ भी नहीं मिल सकता, हाँ, यदि चाहे तो रक्त की
गिराये बिना केवल आध सेर मांस ले सकता है"। इस पर
ने घबरा कर मांस काटना अस्वीकार कर केवल अपने रुपये
वसन्त ने फिर कहा कि "लो ये रुपये हैं'। पुरश्री फिर
को रोक कर शैलाक्ष से बोली—"सुनो जी, तुमने जान बू
एक भलेमानस का प्राण लेना चाहा था, अतएव तुम्हें
होना चाहिए। हाँ, यदि विचारपति तुम्हारी प्रार्थना पर
प्राण छोड़ दे तो दूसरी बात है। पर तुम्हारा समस्त धन ले
जायगा जिसमें से आधा धन राज-भण्डार में मिला लिया
और आधा अनन्त को दिया जायगा। इस पर अनन्त ने
कहा कि "मुझे जो कुछ मिला उसे मैं शैलाक्ष को इस प्र
लौटा देता हूँ कि यह एक ऐसा प्रतिज्ञापत्र लिख दे कि
इसके मरने पर वह धन इसकी बेटी यसोदा और दामाद
को मिले" इस बात को शैलाक्ष ने स्वीकार किया और
प्रार्थना पर न्यायाधीश ने उसको प्राणदान दे कर यह भी
कि शैलाक्ष! यदि तू कुटिलता छोड़ और अपना चा
सुधार कर सभ्य मनुष्य बने तो शेष आधा धन जो राज-भ
में मिला लिया गया है तुझे लौटा दिया जायगा"। इस बा
भी शैलाक्ष ने स्वीकार किया और यसोदा वाले स्वीकारपत्र
हस्ताक्षर कर अनन्त से छुटकारा पाया। न्यायसभा
हुई और सब लोग वकील की प्रशंसा करते करते विदा

ाधीश ने बहुत चाहा कि वकील मेरा अतिथि बने, पर उसने
कामों की झंझट का मिस कर निमन्त्रण अस्वीकार किया ।
न्यायाधीश बसन्त और अनन्त से वकील के आदर-सत्कार के
बहुत कुछ अनुरोध कर बिदा हुआ ।

बसन्त ने बहुत आग्रह किया कि वकील (पुरश्री) मेरा अतिथि
पर उसने किसी प्रकार ठहरना स्वीकार न किया । तब
न्त ने बड़ी नम्रता से कहा कि "वकील महाशय, आप ही की
न-चातुरी से आज मेरे मित्र के प्राण बचे, इसके बदले में,
न्म, हम लोग आप का गुण गाया करेंगे । यह तीन सहस्र
जो शैल्याक को नहीं दी गई आप ग्रहण करें तो बड़ी कृपा
। यद्यपि आप की योग्यता के आगे यह तुच्छ है, तो भी हम
ों पर अनुग्रह कर के आप इसे ग्रहण कीजिए । इसी भाँति
न्त और अनन्त ने बहुत कुछ कहा, पर पुरश्री ने कुछ भी लेना
कार न किया । किन्तु जब बसन्त ने बहुत ही आग्रह किया तो
बोली—"अच्छा आप अपने हाथ के अंगुलित्राण (दस्ताने) मुझे
दें, इन्हें मैं पहिना करूँगा" । यह सुनते ही बड़ी प्रसन्नता से
न्त ने ज्योंही अंगुलित्राण उतारे त्योंही पुरश्री ने फिर कहा—
र यह अँगूठी भी दीजिए, बस यही दोनों आपके स्नेह-चिह्न मैं
दा अपने काम में लाया करूँगा ।"

अँगूठी का नाम सुनते ही बसन्त का मुख सूख गया । यह
ी अधीनता से कहने लगा—"महाशय, क्षमा कीजिए, यद्यपि
ह अँगूठी आपके परिश्रम के आगे तुच्छ है, पर इसे मैं नहीं दे

सकता। हाँ बंशनगर में सब से अधिक मूल की जो अँ
मिलेगी वह आप को अवश्य ले दूँगा"। इस पर पुरश्री
तान कर बोली—"बस महाशय! रहने दीजिए, जब मैं कु
नहीं लेता था तब तो आपने बहुत आग्रह कर के मुझे भीख म
पर विवश किया, परन्तु अब देने के समय बातें बनाते हैं।
भले मानसों के ऐसे ही बर्ताव होते हैं? अस्तु, रखिए, मुझे
न चाहिए"। यह कह कर रुष्ट हो पुरश्री नरश्री के साथ चल
हुई। उसके थोड़ी दूर जाने पर अनन्त ने बहुत कुछ समझा
कर बसन्त से कहा कि "मित्र! ऐसे उपकारी वकील को
करना चाहिए, इस समय अपनी स्त्री से अंगूठी के विषय में
जो प्रतिज्ञा की है उसे भूल कर इसे वकील को दे डालो"।
की बात सुन कर बसन्त ने तुरन्त अँगूठी उतार कर गिरी
हाथ वकील के पास भेजी, जिसे उसने सहर्ष ले लिया
नरश्री ने गिरीश को बातों में फुसला कर उसकी भी अँ
अपने परिश्रम के पलटे में ले ली। जब दोनों अँगूठियाँ
सुन्दरियों के हाथ लग गईं तो वे आपस में यह कहती
शीघ्र अपने स्थान विल्वमठ में पहुँची कि "अब हम लोग
अपने पति के साथ भली भाँति कौतुक करेंगी कि तुम लोग अ
किसी स्त्री को अँगूठी दे आये हो और यहाँ झूठी बातें क
हो"। इसके पीछे बसन्त भी अनन्त और गिरीश को लिये
विल्वमठ में पहुँचा। कुशल-प्रश्न के अनन्तर पुरश्री और न
अपने अपने पति से झगड़ने लगीं कि "तुम मुझे रत्ती भर

चाहनेः तभी तो प्रतिज्ञा करके भी प्रेम के चिह्न वाली अँगूठी
ा स्त्री को दे आये हो" । बसन्त और गिरीश शपथ खाने और
े कि "स्त्री को नहीं दी वरन् वकील और उसके लेखक
। किन्तु वे दोनों एक न सुनतीं और बराबर यही कहतीं कि
तीं नहीं हम लोग भी शपथ खाकर कहती हैं कि तुमने वकील
लेखक को अँगूठी न देकर स्त्री ही को दी है" । इस झगड़े को
कर अनन्त बोला कि "हाय, मैं ही अभागा इस झगड़े का
ण हूँ" । इस पर पुरश्री ने हँस कर उससे कहा कि महाशय!
उदास न हूजिए" और फिर उसने और उसकी सखी नरश्री
अपने अपने पति को उनकी अँगूठी देकर सारा भेद खोल
ा, जिसे सुन सब चकित, हर्षित और मुग्ध हो पुरश्री की
र्व बुद्धि-चातुरी की प्रशंसा करने लगे । फिर पुरश्री ने अनन्त
वह चिट्ठी दी जिसमें लिखा था कि पोत अपने ठिकाने
च गये; डूबे नहीं । उनके डूबने का वृत्तान्त मिथ्या था और
जसोदा का जो अनन्त की प्रेयसी थी, और अपने बाप
ाक्ष के यहाँ से भाग कर पुरश्री के पास आरही थी. उसके बाप
लिखा हुआ प्रतिज्ञा-पत्र दिया जिसमें शैलाक्ष के मरने पर उस
सारी सम्पत्ति जसोदा को प्राप्त होनी लिखी थी । यह देख दोनों
नन्त और जसोदा) अपने अपने अचिन्त्य-पूर्व मनोरथ को प्राप्त
र बड़े प्रसन्न हुए और बार बार पुरश्री के असीम गुणों की
सा करने लगे ।

ौ योंहीं जब कभी आमोद के समय वे लोग इकट्ठे होते तो
ि को स्त्री के न पहिचानने और अँगूठी के विचित्र कौतुक पर

हम सब लोगों के मन में एक ऐसी शक्ति है जो हम सभों बुरे कामों के करने से रोकती और अच्छे कामों की ओर हम में की प्रवृत्ति को झुकाती है। यह बहुधा देखा गया है कि जब ई मनुष्य खोटा काम करता है तो वह बिना किसी के कहे प ही लजाता और अपने मन में दुखी होता है। लड़को! तुमने ा होगा कि जब कभी कोई लड़का किसी मिठाई को चुरा खा लेता है तो वह मन में डरा करता और पीछे से आपही प पछताता है कि मैंने ऐसा काम क्यों किया, मुझे अपनी माता कह कर खाना था। इसी प्रकार एक दूसरा लड़का जो कभी उ चुरा कर नहीं खाता, सदा प्रसन्न रहता है और उसके मन कभी किसी प्रकार का डर और पछतावा नहीं होता। इसका ा कारण है? यही कि हम लोगों का यह कर्तव्य है कि हम लोग री न करें। परन्तु जब हम चोरी कर बैठते हैं तो हमारी त्मा हमें कोसने लगती है। इसलिए हमारा यह धर्म है कि ारी आत्मा जो हमें कहे, उसके अनुसार हम करें। दृढ़ श्वास रखो कि जब तुम्हारा मन किसी काम के करने से चकिचाये और दूर भागे तो कभी तुम उस काम को न करो। हें अपना धर्म पालन करने में बहुधा कष्ट उठाना पड़ेगा, पर से तुम अपना साहस न छोड़ो। क्या हुआ जो तुम्हारे पड़ोसी विद्या और असत्यपरता (बेईमानी) से धनाढ्य हो गये र तुम कंगाल ही रह गये। क्या हुआ जो दूसरे लोगों ने झूँठी ठकारी (खुशामद) करके बड़ी बड़ी नैाकरियाँ पा लीं और

बहुत ही हँसते थे। इसी प्रकार आनन्द के साथ उन
मूर्त्तियों के काल व्यतीत हुए।

कर्तव्य और सत्यता *

कर्तव्य वह वस्तु है जिसे करना हम लोगों का परम
और जिसके न करने से हम लोग और लोगों की दृष्टि से
जाते और कुचरित्र से नीच बन जाते हैं। प्रारम्भिक अ
में कर्तव्य का करना बिना बलात्कार के नहीं हो सकता,
प्रथम प्रथम मन आपही उसे करना नहीं चाहता। इसका आ
प्रथम घर से ही होता है, क्योंकि यहाँ पहिले लड़कों का
माता पिता की ओर और माता पिता का कर्तव्य लड़कों की
देख पड़ता है। इसके अतिरिक्त पति पत्नी, स्वामी सेवक,
स्त्री पुरुष के भी परस्पर अनेक कर्तव्य हैं। घर के बाहर ह
पड़ोसियों और राजा प्रजाओं के परस्पर कर्तव्य को दे
इसलिए संसार में मनुष्य का जीवन कर्तव्यों से भरा पड़ा
जिधर देखो उधर कर्तव्य ही कर्तव्य देख पड़ते हैं। बस
कर्तव्य का पूरा पूरा पालन करना हम लोगों का परम धर्म है,
इसीसे हम लोगों के चरित्र की शोभा बढ़ती है। कर्तव्य का
न्याय पर निर्भर है और वह न्याय ऐसा है जिसे समझने पर
लोग प्रेम के साथ कर सकते हैं।

---

* स्माइल्स क्यारकटर के आशय पर बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० लि...

म सब लोगों के मन में एक ऐसी शक्ति है जो हम सभी
रे कामों के करने से रोकती और अच्छे कामों की ओर हम
की प्रवृत्ति को झुकाती है। यह बहुधा देखा गया है कि जब
मनुष्य खोटा काम करता है तो वह बिना किसी के कहे
ही लजाता और अपने मन में दुखी होता है। लड़को! तुमने
होगा कि जब कभी कोई लड़का किसी मिठाई को चुरा
खा लेता है तो वह मन में डरा करता और पीछे से आपही
। पछताता है कि मैंने ऐसा काम क्यों किया, मुझे अपनी माता
कह कर खाना था। इसी प्रकार एक दूसरा लड़का जो कभी
ई चुरा कर नहीं खाता, सदा प्रसन्न रहता है और उसके मन
कभी किसी प्रकार का डर और पछतावा नहीं होता। इसका
ा कारण है? यही कि हम लोगों का यह कर्तव्य है कि हम लोग
री न करें। परन्तु जब हम चोरी कर बैठते हैं तो हमारी
त्मा हमें कोसने लगती है। इसलिए हमारा यह धर्म है कि
मारी आत्मा जो हमें कहे, उसके अनुसार हम करें। दृढ़
श्वास रक्खो कि जब तुम्हारा मन किसी काम के करने से
झिझकियाये और दूर भागे तो कभी तुम उस काम को न करो।
हें अपना धर्म पालन करने में बहुधा कष्ट उठाना पड़ेगा, पर
ससे तुम अपना साहस न छोड़ो। क्या हुआ जो तुम्हारे पड़ोसी
। मिथ्या और असत्यपरता (बेईमानी) से धनाढ्य हो गये
र तुम कंगाल ही रह गये। क्या हुआ जो दूसरे लोगों ने झूँठी
टुकारी (ख़ुशामद) करके बड़ी बड़ी नौकरियाँ पा लीं और

तुम्हें कुछ न मिला और क्या हुआ जो दूसरे नीचे सुख भोगते हैं और तुम सदा कष्ट में रहते हो। तुम अपने धर्म को कभी न छोड़ो और देखो इससे बढ़ कर सन्तो आदर क्या हो सकता है कि तुम अपने धर्म का पालन सकते हो।

हम लोगों का जीवन सदा अनेक कार्यों में व्यग्र रहता हम लोगों को सदा काम करते ही बीतता है। इसलिए हम को इस बात पर पूरा ध्यान रखना चाहिए कि हम लोग अपने धर्म के अनुसार काम करें और कभी उसके पथ पर हटें; चाहे उसके करने में हमारे प्राण भी चले जायँ तो चिन्ता नहीं।

धर्म-पालन करने के मार्ग में सब से अधिक बाधा चित्त चञ्चलता, उद्देश की अस्थिरता और मन की निर्बलता से है। मनुष्य के कर्तव्य-मार्ग में एक ओर तो आत्मा के भले बुरे कामों का ज्ञान, और दूसरी ओर आलस्य और रहती है। बस, मनुष्य इन्हीं दोनों के बीच में पड़ा रहता है अन्त में यदि उसका मन पक्का हुआ तो वह आत्मा की मान कर अपने धर्म का पालन करता है और यदि उसका कुछ काल तक द्विविधा में पड़ा रहा तो स्वार्थपरता निश्चय आ घेरेगी और उसका चरित्र घृणा के योग्य हो जायगा। इस यह बहुत आवश्यक है कि आत्मा जिस बात के कर दे उसे बिना अपना स्वार्थ सोचे झटपट कर

हेए । ऐसा करते करते जब धर्म करने की बान पड़ जायगी फिर किसी बात का ही भय न रहेगा । देखो इस संसार जितने बड़े बड़े लोग हो गये हैं, जिन्होंने कि संसार का कार किया है और उसके लिए आदर और सत्कार पाया उन सभों ने अपने कर्तव्य को सबसे श्रेष्ठ माना है । क्योंकि तने कर्म उन्होंने किये उन सभों में अपने कर्तव्य पर ध्यान कर न्याय का बर्ताव किया । जिन जातियों में यह गुण पाया ता है वेही संसार में उन्नति करती हैं और संसार में उनका नाम दर के साथ लिया जाता है । एक समय किसी अँगरेज़ी जहाज़ जब कि वह बीच समुद्र में था एक छेद हो गया । उस पर इस सौ स्त्रियां और पुरुष थे। उसके बचाने का पूरा पूरा योग किया गया, पर जब कोई उपाय सफल न हुआ ते तनी स्त्रियाँ इस पर थीं सब नावों पर चढ़ा कर बिदा कर गईं, और जितने मनुष्य उस पोत पर बच गये थे, उन्होंने की छत पर इकट्ठे होकर ईश्वर को धन्यवाद दिया कि वे तक अपना कर्तव्य पालन कर सके और स्त्रियों की प्राण-रक्षा सहायक हो सके । निदान इसी प्रकार ईश्वर की प्रार्थना करते ते उस पोत में पानी भर आया । और वह डूब गया, पर वे लोग पने स्थान पर ज्यों के त्यों खड़े रहे और उन्होंने अपने प्राण बचाने कोई उद्योग न किया । इसका कारण यह था कि यदि वे पने प्राण बचाने का उद्योग करते ते स्त्रियाँ और बच्चे न बच कते । इसी लिए उस पोत के लोगों ने अपना धर्म यही समझा

कि अपने प्राण देकर स्त्रियों और बच्चों के प्राण बचाने चाहिएँ
इसी के विरुद्ध फ़्रांस देश के रहनेवालों ने एक डूबते हुए जह
पर से अपने प्राण तो बचाये, किन्तु उस पोत पर जितनी ि
और बच्चे थे उन सभों को उसी पर छोड़ दिया । इस नीच
की सारे संसार में निन्दा हुई । इसी प्रकार जो लोग स्वार्थी हो
अपने कर्तव्य पर ध्यान नहीं देते, वे संसार में लज्जित होते
और सब लोग उनसे घृणा करते हैं ।

कर्तव्य-पालन से और सत्यता से बड़ा घना सम्बन्ध है और
जो मनुष्य अपना कर्तव्य-पालन करता है वह अपने कामों
वचनों से सत्यता का बर्ताव भी रखता है । यह ठीक समय
उचित रीति से अच्छे कामों को करता है । सत्यता ही एक
वस्तु है जिससे इस संसार में मनुष्य अपने कार्यों में सफलता
सकता है क्योंकि संसार में कोई काम झूठ बोलने से नहीं
सकता । यदि किसी घर के सब लोग झूठ बोलने लगें तो उ
घर में कोई काम न हो सकेगा और सब लोग बड़ा दुःख भोगें
इसलिए हम लोगों को अपने कार्यों में झूठ का कभी बर्ता
नहीं करना चाहिए, अतएव सत्यता को सबसे ऊँचा स्थान दे
उचित है । संसार में जितने पाप हैं झूठ उन सभों से बुरा है
झूठ की उत्पत्ति पाप, कुटिलता और कादरता के कारण होती है
बहुत से लोग सचाई का इतना थोड़ा ध्यान रखते हैं कि अप
सेवकों को स्वयं झूठ बोलना सिखाते हैं । पर उनको इस बात

दस्वयं करना ग्रैार क्रुद्ध होना न चाहिए जब कि नौकर भी उनसे पने लिए झूठ बोलें।

बहुत से लोग झूठ की रक्षा नीति ग्रैार ग्रावश्यकता के बहाने रते हैं। वे कहते हैं कि इस समय इस बात को प्रकाशित न रना ग्रैार दूसरी बात को बना कर कहना नीति के ग्रनुसार, मयानुकूल ग्रैार परम ग्रावश्यक है। फिर बहुत से लोग सी बात को सत्य सत्य कहते हैं, पर उसे इस प्रकार से घुमा रा कर कहते हैं कि जिससे सुननेवाला यही समझे कि यह ात सत्य नहीं है. वरन् इसका उलटा सत्य होगा। इस प्रकार । बातों का कहना झूठ बोलने के पाप से किसी प्रकार भी म नहीं।

संसार में बहुत से ऐसे भी नीच ग्रैार कुत्सित लोग होते हैं जो झूठ बोलने में ग्रपनी चतुराई समझते हैं ग्रैार सत्य को छिपा कर धोखा देने या झूठ बोल कर ग्रपने को बचा लेने में ही ग्रपना परम गौरव मानते हैं। ऐसे लोग ही समाज को नष्ट कर हे दुःख ग्रैार सन्ताप के फैलाने में मुख्य कारण होते हैं। इस प्रकार का झूठ बोलना स्पष्ट झूठ बोलने से ग्रधिक निन्दित ग्रैार कुत्सित कर्म है।

झूठ बोलना ग्रैार भी कई रूपों में देख पड़ता है। जैसे चुप रहना, किसी बात को बढ़ा कर कहना, किसी बात को छिपाना, भेष बदलना, झूठ मूठ दूसरों के साथ हाँ में हाँ मिलाना, प्रतिज्ञा करके उसे पूरा न करना ग्रैार सत्य को न बोलना इत्यादि, जब

कि ऐसा करना धर्म के विरुद्ध है तो ये सब बातें झूठ बोलने से किसी प्रकार कम नहीं हैं। फिर ऐसे लोग भी होते हैं जो मुँह देखी बातें बनाया करते हैं, परन्तु करते वेही काम हैं जोकि उन्हें रुचता है। ऐसे लोग मन में समझते हैं कि कैसा सबको मूर्ख बना कर हमने अपना काम कर लिया, पर वास्तव में वे अपने ही को ही मूर्ख बनाते हैं और अन्त में उनकी पोल खुल जाने पर समाज में सब लोग घृणा करते और उनसे बात करना अपना अपमान समझते हैं।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने मन में किसी गुण के न रहने पर भी गुणवान् बनना चाहते हैं। जैसे यदि कोई पुरुष कविता करना न जानता हो, पर वह अपना ढँग ऐसा बनाये रहे जिससे लोग समझें कि यह कविता करना जानता है, तो यह कविता का आडम्बर रखनेवाला मनुष्य झूठा है, और फिर यह अपने भेष का निर्वाह पूरी रीति से न कर सकने पर दुःख सहता है और अन्त में भेद खुल जाने पर सब लोगों की आँखों में झूठा और नीच गिना जाता है। परन्तु जो मनुष्य सत्य बोलता है वह आडम्बर से दूर भागता है और उसे दिखावा नहीं रुचता। उसे तो इसी में बड़ा सन्तोष और आनन्द होता है कि सत्यता के साथ वह अपना कर्तव्य-पालन कर सकता है।

इसलिए हम सब लोगों का यह परम धर्म है कि सत्य बोलने को सब से श्रेष्ठ मानें और कभी झूठ न बोलें, चाहे उससे कितनी ही अधिक हानि क्यों न होती हो। सत्य

ोलने ही से समाज में हमारा सम्मान हो सकेगा ग्रार हम ग्रानन्द-र्वक ग्रपना समय बिता सकेंगे। क्यों कि सच को सब कोई चाहते ार झूठे से सभी घृणा करते हैं। यदि हम सदा सत्य बोलना ापना धर्म मानेंगे तो हमें ग्रपने कर्तव्य के पालन करने में कुछ ी कष्ट न होगा ग्रौर बिना किसी परिश्रम ग्रौर कष्ट के हम ग्रपने न में सदा सन्तुष्ट ग्रौर सुखी बने रहेंगे।

ग्रहिल्याबाई *

महाराष्ट्र देश भारत के दक्षिण भाग में है। इसके उत्तर ग्रोर नर्मदा नदी बहती है, पश्चिम में ग्ररब की खाड़ी, दक्षिण ी पुर्तकेसों के देश ग्रौर पूर्व में तुङ्गभद्रा नदी है। इस देश के रहनेवाले महाराष्ट्र या मरट्ठे कहलाते हैं। जिस समय ग्रौरंगज़ेब हिन्दू-राज्यों के नाश करने में लगा हुग्रा था, उस समय इसी महाराष्ट्र कुल के एक मात्र वीरशिरोमणि महाराज शिवाजी ने स भरत-खण्ड में एक नवीन हिन्दू-राज्य स्थापित किया था, नके साथही महाराष्ट्र देश में ग्रौर भी ग्रनेक वीर पुरुष हुए थे, ग्रौर वे भी शिवाजी की नाईं ग्रतिसामान्य वंश में जन्म लेकर ग्रपने ग्रपने उद्योग से एक एक राज्य ग्रौर राजवंश की प्रतिष्ठा कर गये हैं जिनमें ग्रनेक वंशों में ग्रब तक राज्य वर्तमान हैं इन्हीं

* नागरी प्रचारिणी पत्रिका से संक्षेप करके महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी लिखित।

सब वीर पुरुषों में मल्हारराव हुल्कर हुए हैं। महारानी ...
बाई इन्हीं मल्हारराव की पुत्र-वधू थी। इसलिए पहिले
मल्हारराव का थोड़ा सा परिचय देना उचित है।

पूना से बीस कोस की दूरी पर नीरा नदी के तीर ...
नामक एक छोटे से गाँव में "धनगर" अर्थात् पशुपालक ...
की बस्ती थी। उन्हीं में एक मनुष्य का नाम कुन्दजी था। ...
भाषा में "कर" शब्द का अर्थ अधिवासी अर्थात् ...
कुन्दजी के पूर्वज "होल" नामक ग्राम में रहते थे इसलिए
"होलकर" वा "हुलकर" कहलाये। कुछ लोगों का यह भी
है कि "हलकर" अर्थात् "हलकर्षण" का अपभ्रंश "होल...
है। जो कुछ हो, परन्तु मल्हारराव होलकर-वंशी थे। इनका ...
ईसवी सन् की सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में हुआ था। वे
चार वर्ष के थे तब उनके पिता कुन्दजी का देहान्त हो गया ...
उनके मरतेही उनकी स्त्री की अपने सम्बन्धियों से कुछ ...
अनबन हुई कि अन्त में वह अकेली अपने पुत्र को ले उस ग्राम
निकल कर अपने भाई नारायणजी के निकट चली गई। ...
समय नारायणजी ख़ान देश के अन्तर्गत "टालन्दोन" नामक ...
में रहते थे। वहाँ उनकी कुछ थोड़ी सी भूमि थी और आप ...
मरट्ठे दलपति* के यहाँ कुछ अश्वारोही सेना के अधिनायक ...
अपनी जाति के नियमानुसार उन्होंने अपने बालक भांजे
पशुपालन कर्म में नियुक्त किया। ऐसी लोकोक्ति चली आती

* दलपति=सरदार।

कि एक दिन बालक मल्हारराव एक बड़ वृक्ष के नीचे पड़ा सो रहा था ग्रैार उसके पत्तों की सन्धि से सूर्य की किरणें उसके मुख पर पड़ रही थीं। मुख पर छाया न देख कर एक विषधर सर्प ने उसके मुख पर अपने फण से छाया की। जब मल्हारराव की नींद टूटी ते। वह सर्प धीरे से वहाँ से सरक गया। धीरे धीरे यह बात नारायणजी के कानों तक पहुँची। तब तो उन्होंने बालक को होनहार जान कर उसे पशु चराने से निवृत्त किया ग्रैार अपने साथ अश्वारोहियों में रख लिया। मामा के साथ रहने से ये युद्ध-विद्या में बड़े निपुण हुए ग्रैार कई एक युद्धों में इन्होंने बड़ी वीरता दिखलाई।

अतिदीन ग्रैार सामान्य अवस्था में जन्म पाने पर भी निज बाहुबल से मल्हारराव भारत के प्रधान वीर-पुरुषों में अपना नाम गिना ग्रैार राज्य का पूरा पूरा सुख भोग कर छिहत्तर वर्ष की अवस्था में इस लोक के। छोड़ परलोक पधारे। मरते पर वे वार्षिक छिहत्तर लाख के आय की भूसम्पत्ति ग्रैार छिहत्तर करोड़ रुपये छोड़ गये थे।

उनके एक ही पुत्र खंडेराव नाम का था जिसका विवाह अहिल्याबाई के साथ हुआ था। सन् १७२५ ईसवी में मालवा देश के अन्तर्गत किसी एक सामान्य ग्राम में अहिल्याबाई का जन्म हुआ था। उसके माता-पिता सेंधिया-वंश के थे।

वह कुछ अधिक सुन्दरी न थी। उसके शरीर का रंग सांवला ग्रैार डील डौल मध्यम था, परन्तु उसके मुख पर एक ऐसी दिव्य

ज्योति विराज रही थी कि जो उसके हृदय के उत्तम गुणों प्रकाशित करती थी। महाराष्ट्र-स्त्रियों में उस समय पठन-पाठ की रीति प्रचलित न थी, परन्तु अहिल्याबाई पढ़ी लिखी थी थोड़े ही अवस्था में उसका विवाह मल्हारराव के एकलौते खंडेराव के साथ हुआ था। जब से वह अपनी ससुराल में आई तभी से बड़े प्रेम और श्रद्धा-भक्ति के साथ वह सास ससुर की सेवा और घर गृहस्थी के सब कामों को बड़ी चतुराई और सुघरता के साथ मन लगा कर करती थी। मल्हारराव का स्वभाव उग्र और हठी था, परन्तु व्यय करने में उनका हाथ खुला हुआ था। उनके इस उग्र स्वभाव से अहिल्याबाई मनही मन में दुखी होती और कुढ़ती थी, परन्तु इसलिए कभी उसने उन पर से अपनी श्रद्धा भक्ति नहीं घटाई। मल्हारराव भी जिस दिन से पुत्र-वधू को अपने घर लाये, उसी दिन से उस पर उनका बड़ाही वात्सल्य और स्नेह हो गया था। जब कभी किसी कारण से मल्हारराव क्रुद्ध, दुखी या चिन्तित भी रहते, कि जिस समय अच्छे अच्छे दलपतियों का भी साहस उनके सामने कुछ कहने का नहीं होता था उस समय भी, यदि अहिल्याबाई कुछ कहला भेजती थी तो बिना विचार और विलम्ब के वह उसे तुरन्त पूरा कर देते थे। यहाँ तक अहिल्याबाई पर उनका वात्सल्य था कि वह जितना जल पिलाती थी उतना ही वे पीते थे। अहिल्याबाई की सास गौतमा बाई का स्वभाव भी उग्र और असहनशील तो था, परन्तु यह भी अपनी पुत्र-वधू के गुणों से बहुत ही वशीभूत हो

। अहिल्याबाई सारे दिन घर-गृहस्थी के काम और सास-की सेवा-टहल ही में बिताती थी, और जब पहर रात बीत तब शयन-गृह में जाती, और फिर थोड़ी रात रहते ही से उठ अपने कार्य्य में लगती थी। जन्म भर उसने यों ही दिन बिताया।

बचपन ही से अहिल्याबाई पाप से भय खाती और पुण्य में लगाती थी। उसने अम्बादास पैाराणिक से मन्त्र ग्रहण किया यह गुरुजी के आज्ञानुसार निज इष्ट देव की श्रद्धा-भक्ति और उसे छिपाये रखती थी। अपने यौवन काल में भी उसने विलास-सुख में व्यर्थ समय नहीं बिताया। यों तो में वह शूद्रा थी, पर तो भी उसके चरित्र उत्तम ब्राह्मण-कुल स्त्रियों से किसी प्रकार भी घट कर न थे।

थोड़ी ही अवस्था में उसके दो सन्तति हुईं जिनमें एक पुत्र एक कन्या। पुत्र का नाम मालीराव था और कन्या का मच्छा-। पुत्री का विवाह यशवन्तराव फांसिया से हुआ था।

सन् १७५४ ईसवी में अहिल्याबाई के स्वामी खंडेराव का न्त हुआ। वृद्ध अवस्था में पुत्रशोक से मल्हारराव बड़े ही थत हो गये। उस समय अहिल्याबाई की अवस्था केवल अठा-वर्ष की थी। स्वामी के मृत्यु के समाचार को सुन कर अहिल्या-ई ने पति के शोक से सती होना चाहा। इस पर राजपरिवार लोगों ने उसे बहुत समझाया पर उसने अपना हठ न छोड़ा।

अब अन्त में उसके ससुर मल्हारराव विकल होकर बोले—
क्या तू मुझे इस अथाह संसार-समुद्र में डुबा कर चली ?
खंडूजी तो मुझे इस बुढ़ौती में धोखा देकर छोड़ही गये
केवल तेरा मुख देख कर मैं उसे बिसरा रहा हूँ, और तु
देख कर जीता हूँ। किन्तु जो तू भी मुझे त्याग देगी तो
अपना प्राण दे देना अच्छा है। बेटी, यह राज-पाट, ध
सब तेरा ही है। यदि तू चाहेगी तो जो कुछ मेरे जीवन
शेष रह गये हैं वे भी किसी प्रकार बीत जायँगे"। ऐसा
बूढ़े मल्हारराव बिलख बिलख कर रोने और विलाप करने
उनकी इस दीन अवस्था को देख कर लोगों का हृदय फट
और अहिल्याबाई का भी हृदय ऐसा भर आया कि विवश
उसे अपना संकल्प त्यागना पड़ा।

खंडेराव की मृत्यु के उपरान्त राज-काज की भीतरी [illegible]
के देखने भालने तथा आय व्यय के लेने का भार अहिल्या
के ऊपर पड़ा, क्योंकि मल्हारराव तो सदा बाहरी युद्ध
रहते थे। केवल धन-उपार्जन करना ही उनके भाग्य में [illegible]
उसका सञ्चय करना और उसकी सुव्यवस्था करना अहि
की चतुरता और दक्षता पर निर्भर था। राज्य के सभी [illegible]
अहिल्याबाई की आज्ञा के बिना एक तिनका नहीं हिलता था
मल्हारराव तो [illegible] के साथ प्रायः "[illegible]"
[illegible] अहिल्याबाई [illegible]
[illegible], [illegible]

न अथवा जो कुछ व्यय की आवश्यकता होती, उतना मल्हारराव के पास भेज देती थी। सिर पर इतने बड़े ा के रहते भी यह अपना अधिक समय दान, धर्म, तीर्थ, आदि ही में व्यतीत करती, और इतनी सामर्थ्य होने पर क्रोध या अभिमान ने उसके हृदय को स्पर्श तक नहीं या था।

जब तक मल्हारराव जीते रहे तब तक तो जैसे अन्त-पुर-ासिनी बहू-बेटियाँ रहती हैं, वैसेही अहिल्याबाई भी अपने पुत्र-न्यायों के साथ रही। परन्तु मल्हारराव की मृत्यु के उपरान्त नका पौत्र अर्थात् अहिल्याबाई का पुत्र मालीराव राज्यसिंहासन र बैठा। परन्तु न तो उसीके भाग्य में राज्य था और न अहिल्या-बाई ही के भाग्य में सुख था। पुत्र के द्वारा लोग सुखी होते हैं, परन्तु वह अपने पुत्र के चरित्र से बड़ी ही दुखी थी। दिन रात पुत्र के कुचरित्र के कारण उसे रोना और दुखी होना पड़ता था। क्योंकि बचपन ही से मालीराव का चित्त चञ्चल था। अहिल्या-बाई ने सोचा था कि अवस्था बढ़ने पर इसके चरित्र भी सुधर जायँगे और बुद्धि भी ठिकाने आ जायगी। परन्तु उसकी आशा व्यर्थ हुई। क्योंकि मल्हारराव की मृत्यु के उपरान्त मालीराव अपने पितामह की राज-गद्दी पर तो बैठा, परन्तु उसका चरित्र न सुधरा। उसकी उन्मत्तता और क्रूरता ने लोगों का अन्तःकरण ऐसा दुःखित किया कि जिस के कारण अहिल्याबाई को बड़ा कष्ट सहना पड़ा।

न जाने किस पाप से अहिल्याबाई सी पुण्यवती के ग
पिशाचरूप यह पुत्र जन्मा था। बस, इसी निन्दा से दि
उसे रोने और कलपने बीतता था। स्नेहमयी माता के मन
को पीड़ित करने के कारण मालीराव अधिक दिनों तक
का सुख न भोग सका। वह केवल नौ महीने राज्य कर दि
ही परलोक को सिधारा।

मालीराव की मृत्यु के उपरान्त मल्हारराव का कोई भी उ
धिकारी नहीं रह गया। और अहिल्याबाई की पुत्री
के पुत्र को नाना की सम्पत्ति का स्वत्व इसलिए नहीं पहुं
था कि उसका पिता यशवन्तराव फणसिया हुलकर वंश का न
अतएव अहिल्याबाई ही को सन् १७६६ में राज्यशासन का
अपने हाथ में लेना पड़ा।

मल्हारराव हुलकर को सदा युद्ध-विग्रह के कारण कभी
कभी पश्चिम, कभी उत्तर और कभी दक्षिण के भिन्न भिन्न स्थ
में जाना और अनेक दिनों तक रहना पड़ता था। इसलिए उ
बाजीराव पेशवा के अनुरोध से गङ्गाधर यशवन्त को अपना प्रध
मन्त्री बनाकर सब राज-काज का भार उसी को दे रक्खा था
गङ्गाधरराव बड़ाही स्वार्थी और कुटिल-स्वभाव का मनुष्य था
उसने विचारा कि यदि अहिल्याबाई ऐसी चतुरा और नीति-
स्त्री ने स्वयं राज्यशासन का भार अपने हाथ में रक्खा तो मे
स्वार्थ की सिद्धि में पूरी बाधा पड़ेगी और इसके सम्मुख मे
कोई भी कला न लगेगी। इसलिए उसने अहिल्याबाई से क

ाप स्त्री हैं, आप से राज्य का भार न चल सकेगा, इस कारण
: बालक को आप गोद ले लीजिए।

अहिल्याबाई ने उसकी कुटिलता समझ कर उत्तर दिया कि
: राजा की तो स्त्री हूँ और दूसरे की माता, अब तीसरे
को गद्दी पर बैठाऊँ ? इसलिए स्वयं मैं ही गद्दी पर बैठूँगी।
: ऐसे उत्तर को पाकर गङ्गाधर ने जो कि उस समय मरट्ठों
एक प्रधान दलपति था, राघोबा दादा को, जो कि पेशवा
चाचा था, धन का लोभ दिया और उसे अपने पक्ष पर कर
के लिए पत्र लिखा कि यदि आप इस समय चढ़ आवें तो
त में यह राज्य आपके हाथ आ जायगा। राघोबा भी बिना
। विचारे धन के लोभ में आकर गङ्गाधर के पक्ष पर हो गया।
अहिल्याबाई को यह सूचना मिली कि लोभी राघोबा गङ्गा-
के पक्ष पर है, तब उसने कहला भेजा कि यह राज्य मेरे
र का है, मेरे पति का है, मेरे पुत्र का है और अब मेरा है,
मेरी इच्छा पर है कि चाहे मैं किसी को पोष्य-पुत्र बनाऊँ या न
ऊँ। ऐसी अवस्था में आप लोगों को यह उचित नहीं है कि
; अबला पर किसी प्रकार का अन्याय करें या मुझे व्यर्थ दबावें;
: यदि आप लोग अन्याय का पक्ष अवलम्बन करेंगे तो उसके
चत फल को भोगेंगे।

अहिल्याबाई के ऐसे वाक्यों को सुन के राघोबा को बिना
वारे यह अभिमान हो आया कि मल्हारराव की पुत्र-वधू एक
धवा अबला को इतना अभिमान हुआ है जो हम लोगों के

आग्रह को नहीं मानती, इसलिए उसे अवश्य दबाना चाहि
ऐसा विचार कर उसने अहिल्याबाई के साथ युद्ध का प्र
किया। इस समाचार को जानकर अहिल्याबाई ने भी
देश के दूसरे दलपतियों से इन दुष्टों के अभिप्राय को समझ
उनकी सम्मति पूछी। तब उन लोगों ने भी गङ्गाधरराव
राघोबा दादा की कुटिलता को समझ कर अहिल्याबाई का
लिया और कहा कि यदि युद्ध होगा तो हम सब तुम्हारे साथ
तब अहिल्याबाई ने अपने विश्वासी दलपतियों को बुला कर
गुप्त सभा की, और उसी समय जानोजी भोसला, माधोजी सेंधि
और गायकवाड़ आदि राजाओं तथा पेशवा माधोराव को
लिखा कि मेरे ससुर ने अपने हृदय का रुधिर देकर जिस
का स्थापित किया है, आज मुझे असहाय अबला जान कर
लोग उसको ग्रसा चाहते हैं, इसलिए मैं अबला-धर्म के पथ
आप लोगों की सहायता चाहती हूँ। इसलिए धर्म और न्याय
विचार करके आप लोग मेरी सहायता के लिए सेना भेजें

उधर तो उसने दलपतियों के पास पत्र भेजे, और इधर तु
जीराव को अपना सेनापति बना और आप स्वयं वीर-वेष ध
कर और धनुष-बाण, भाला और खड्ग हाथ में लेकर युद्ध के
उद्यत हुई।

इधर तो अहिल्याबाई प्रयाण करना चाहती थी कि उध
गायकवाड़ की बीस सहस्र सेना भी आ उपस्थित हुई। भो
के दूत ने भी आकर कहा कि स्वयं भोसला सैन्य-सहित

र उपस्थित हैं। और दलपतियों के यहाँ से भी इसी प्रकार
ता पहुँची और न्यायपरायण पेशवा माधोराव ने भी उस
उत्तर में लिखा कि जो कोई तुम्हारे राज्य पर पाप-दृष्टि करे
संदेह के तुम उसके दुष्कर्म का प्रतिफल दो, और अपने
नेधि स्वरूप अपने दो कार्य-कर्त्ताओं (कारिन्दों) को मेरे यहाँ
दो।

चारों ओर से सहायता और आश्वासन-वाक्य पाकर अहिल्या-
ने रातों रात अपनी सेना सजाई और इन्दौर से निकल कर
याखेड़ी" नामक स्थान में कटक का पड़ाव डाल युद्ध की
क्षा करने लगी और उसने, जिन जिन रजवाड़ों की सेनायें
यता के लिए आई थीं, उनके भोजन और व्यय आदि का पूरा
प्रबन्ध कर दिया, क्योंकि उस समय उसका राज-भण्डार धन-
य से परिपूर्ण था।

उधर गङ्गाधर पन्त और राघोबा दादा भी पचास सहस्र
ओं की भीड़भाड़ लेकर सिप्रा नदी के उस पार आ जमे।
संवाद के पातेही अहिल्याबाई के सेनापति तुकोजीराव
कर ने अपनी स्वामिनी (अहिल्याबाई) के चरण की वन्दना कर
राघोबा दादा की गति रोकने के लिए, सेना के साथ आगे बढ़
र सारी रात चल कर, सूर्योदय के पहिले, सिप्रा नदी के तट
, उज्जयिनी के निकट एक घाटी के पास अपनी सेना का
डाल लिया। दूसरे दिन शत्रुओं की सेना जब नदी पार
ने की चेष्टा करने लगी तब तुकोजी ने दादा साहब से कहला

भेजा कि [illegible] में [illegible] होकर बैठा हूँ; यदि आप यहाँ
सम्भल कर और अपना आगा पीछा सोच विचार कर आ
भी सब लिये आपकी अगवानी के लिए उपस्थित हूँ।

तुकोजी के ऐसे निर्भय-समाचार को पाते ही दादा
कलेजा दहल गया। क्योंकि उसने अहिल्याबाई को जैस
जैसा साधारण मान लिया था वैसा न हुआ। उसकी वीर
सारी उमङ्ग जाती रही और आगा पीछा सूझने लगा।
अछता पछता कर उसने तुकोजी से कहला भेजा कि ए
मालीराव बाबा की मृत्यु के समाचार को सुन कर बाई
सान्त्वना देने के लिए आ रहे हैं, परन्तु न जाने किस
आप लड़ने के लिए उद्यत हो उठे हैं। इस चतुराई के उत्त
सुन कर तुकोजी ने फिर उससे कहला भेजा कि यदि आप
ग्रह और दया करके बाईजी से भेंट के लिए आये हैं तो
भीड़ भाड़ की क्या आवश्यकता है? इसे सुनते ही पालकी
चढ़ कर दस पाँच सेवकों के साथ राघोबा दादा तुकोजी
शिविर में चला आया। इधर उसका आना सुन तुकोजी भी
बढ़ कर बड़े आदर के साथ उसे अपने कटक में लिवा
उसी दिन राघोबा ने अपने कटक को उज्जैन में छोड़
कुछ लोगों के साथ अहिल्याबाई की भेंट के लिए इन्दौ
यात्रा की। अहिल्याबाई ने भी बड़े ही आदर-सत्कार से
अगवानी और भेंट की और उसे अपने अन्तःपुर के निकट

ा । एक महीने राघोबा दादा इन्दौर में रहा और बराबर हिल्याबाई से भेंट करता रहा।

दादा साहब की बिदाई के पीछे भोंसला गायकवाड़ आदि की सेनाएं सहायता के लिए आई थीं, उन्हें बड़े आदर सत्कार के थ अहिल्याबाई ने बिदा किया।

अहिल्याबाई ने तुकोजी को राज्य के कठिन कामों को सौंप : बड़ीही बुद्धिमानी की थी, क्योंकि एक तो वे हुलकर-वंशही थे, दूसरे अहिल्याबाई से वयःक्रम में बड़े होने पर भी माता ामान उस पर श्रद्धा- भक्ति रखते और "मातुश्री" कह कर पुकारते थे। वे स्थिर-प्रकृति, धर्मभीरु, रणकुशल और राज-ि-निपुण मनुष्य थे। युद्ध और राज्य की शान्ति-रक्षा आदि का य तो तुकोजी करते थे और अहिल्याबाई निश्चिन्तता से अपना -कर्म करती और प्रजा की किसमें भलाई होगी यह विचारा ो थी। वह नित्य सूर्योदय के पहिले शय्या से उठ प्रातःकृत्य के पूजा करने बैठती और उसी समय ब्राह्मणों से रामायण, ाभारत और पुराण आदि की कथा सुनती थी। उस समय के द्वार पर मँगतों की भीड़ लगी रहती थी। पूजा से उठके अपने हाथ से ब्राह्मणों को दान और कंगलों को भिक्षा देती । इसके अनन्तर निमन्त्रित ब्राह्मणों को भोजन कराती और र आप भोजन करती थी। भोजन उसका बहुत ही सामान्य । उसमें राजाओं और रानियों की भाँति विशेष आडम्बर ीं होता था। आहार के अनन्तर थोड़ी देर यह विश्राम

करती ग्रौर फिर उठ कर एक साधारण सादी साड़ी
राजसभा में जाती, ग्रौर संध्या तक बड़ी सावधानी से
काज किया करती थी। इसकी सभा में किसी को रोक
न थी; जिसे जो कुछ अपना दुःख सुख निवेदन करना
वह स्वयं जाकर निवेदन करता ग्रौर स्वयं उसे सुन कर
बाई यथोचित आज्ञा देती थी। संध्या होने पर सभा
होती, तब प्रायः तीन घंटे तक फिर वह पूजा में बैठती
तीन घंटे उसी में बिता कर पीछे मंत्री ग्रौर राज-प्रधान
चारियों को एकत्र कर राज-काज का प्रबन्ध या ग्रौर जो
मन्त्रणा आदि करनी होती, करती; ग्रौर राज्य के आय-व्यय
बड़ी सावधानी से जाँच करती थी। जब रात के ग्यारह
तब वह सोती थी। राज-काज, प्रजा पालन, उपवास ग्रौर
चरणा आदि कार्यों ही में उसके दिन बीतते थे। ऐसा कोई
सम्बन्धी त्यौहार या उत्सव न था जिसे यह बड़े समारोह
करती हो। लोगों का ऐसा विश्वास है कि जो सांसारिक
में फँसा रहता है उससे धर्म-कर्म या परमार्थ की चिन्ता
हो सकती, ग्रौर जो परमार्थ में लगा रहता उससे
कार्य नहीं हो सकते। परन्तु धन्य अहिल्याबाई थी कि जो
सङ्ग दोनों कार्यों को उचित रीति से भली भाँति सम्पादन
ग्रौर किसी कार्य में किसी प्रकार का विघ्न नहीं होने देती
जिन लोगों को ऐसा भ्रम है कि एक सङ्ग ये दोनों
नहीं निभते, उनके लिए अहिल्याबाई उदाहरण है। भोग,

लालसा छोड़ कर जिस उत्तमता और नियम के साथ इसने
ना राज-काज चलाया था ऐसे उदाहरण इतिहासों में बहुत ही
दिखाई देते हैं।

जिस समय अहिल्याबाई ने सुख और शान्ति के साथ राज
या था, वह समय वर्त्तमान समय के महा प्रतापी अँगरेज़ों का
शान्तिमय न था, वरन् घोर युद्ध, विग्रह, उत्पात और लूट-
र का था। उस समय भारतवर्ष एक ओर से कट्टर लड़ाके
कू मरहट्टे, और दूसरी ओर से उद्दण्ड जाट, रोहिले, लुटेरे,
ढारी और अनेक डाकुओं का रङ्गस्थल हो रहा था। विशेष
दक्षिण प्रदेश तो पूर्ण अशान्तिमय था। ऐसे भयङ्कर समय
और ऐसे भयानक प्रदेश में भी जो अहिल्याबाई ने सुख, शान्ति
र धर्मपूर्वक राज किया, क्या यह एक अबला स्त्री के लिए
शेष गौरव का विषय नहीं है? वे ही लुटेरे, वे ही लड़ाके, वे ही
द्दवी, जो सारे भारतवर्ष में हलचल मचा रहे थे, निकट रहने
भी प्रतापवती अहिल्याबाई के शासित राज्य की ओर आँख
क नहीं उठा सकते थे, यह केवल उसके पुण्य का प्रत्यक्ष
ताप था।

उसके शान्तिमय राज्य में एक बार उदयपुर के आलसी
णा से उसका विवाद हुआ था, परन्तु उसके वीर सिपाहियों
सम्मुख राणा की सेना को हार माननी पड़ी और अन्त में राणा
अहिल्याबाई से सन्धि करके झगड़ा मिटाया। जयपुर के राजा

के यहाँ हुलकर के कुछ रुपये कर के अटक रहे थे। तुकोजी ने
रुपयों की उगाही के लिए बड़ी लिखा पढ़ी की। उसी
सेंधिया का बख़शी जिउवा दादा भी अपने रुपयों के लिए
कर रहा था। उस पर उन दोनों के पत्र के उत्तर में जयपुर
के मंत्री दौलतराम ने दोनों को लिखा कि हम सेंधिया
कर दोनों के ऋणी हैं। इसलिए जो इन में से अधिक बल या
रखता हो वह हमसे रुपये ले। इस उत्तर को पाकर तुकोजी
पुर के मन्त्री के मन की बात को समझ कर सेना के साथ जय
की ओर चले कि बीच में जिउवा दादा ने उन पर आक्र
किया। फिर तो दोनों में घोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में तु
के कई साहसी सेनापति और योधा मारे गये और उन
हार हुई। तब वह जयपुर से बाईस कोस की दूरी पर आल
गाँव नामक स्थान में लौट आये और वहाँ एक दृढ़ दुर्ग में उन
आश्रय लिया। उस समय अहिल्याबाई महेश्वर-क्षेत्र में थीं
तुकोजी का पत्र उसके पास वहीं पहुँचा। उन्होंने अपने पत्र
धन और सेना की सहायता के लिए प्रार्थना की थी। इ
समाचार के पातेही अहिल्याबाई मारे क्रोध के काँपने ल
और बोली कि इस अपमान से मुझे इतना दुःख हुआ है
जितना तुकोजी के मरने पर भी न होता। इतना कह
उसी क्षण उसने पाँच लाख रुपये भेजे और साथही उ
तुकोजी को एक पत्र लिखा कि तुम किसी प्रकार से चिन्तित
न होना, मैं यहाँ से रुपये और सेना का पुल बाँधे देती हूँ

[उ]स जिस प्रकार से हो उस कृतघ्न को दमन करो और यदि तुम [स]ाहस गँवा चुके हो तो लिखो, इस बुढ़ापे में भी मैं* स्वयं आकर [यु]द्ध करूँगी। इसके थोड़े ही दिनों के उपरान्त अहिल्याबाई ने [तु]कोजी की सहायता के लिए अट्ठारह सहस्र सैन्य भेजी कि जिसे [प]ाते ही उन्होंने घोर युद्ध किया। यह युद्ध तीन महीने तक होता [र]हा, अन्त में तुकोजी ने वैरी पर विजय पाई और जिउवा ने परा-[ज]य स्वीकार की।

अहिल्याबाई के भण्डार में जो कुछ धन सञ्चित था, गद्दी पर [ब]ैठते समय अहिल्या ने उसपर तुलसीदल रख दिया था। एक समय राघोबा दादा ने लोभवश अहिल्याबाई से कहला भेजा कि इस समय मुझे कुछ धन की आवश्यकता है, इसलिए आप मुझे कुछ रुपये भेज दीजिए। अहिल्याबाई उसकी प्रकृति को भली-भाँति से जानती थी, इसलिए उसने कहला भेजा कि मैं अपने सञ्चित धन पर तुलसीदल रख चुकी हूँ, अब मैं उसमें से कुछ भी नहीं ले सकती, क्योंकि वह कृष्णार्पण हो चुका है। तथापि आप ब्राह्मण हैं, यदि दान लिया चाहें तो प्रसन्नता से मैं तुलसी-दल और अक्षत ले सङ्कल्प करके आपको दे सकती हूँ। राघोबा ने इस बात से चिढ़ कर अहिल्याबाई को लिखा कि मैं दान लेने-वाला प्रतिग्रही ब्राह्मण नहीं हूँ; या तो मुझे रुपये भेजो, नहीं तो युद्ध के लिए तत्पर हो। इसके उत्तर में अहिल्याबाई ने कहला भेजा कि युद्ध में प्राण जायँ तो जायँ परन्तु सङ्कल्पित धन तो मैं यों न उठा

* इस समय अहिल्याबाई की अवस्था ५८ वर्ष की थी।

के यहाँ हुलकर के कुछ रुपये कर के अटक रहे थे। तुकोजी ने रुपयों की उगाही के लिए बड़ी लिखा पढ़ी की। उसी से धिया का बख़शी जिउवा दादा भी अपने रुपयों के लिए कर रहा था। उस पर उन दोनों के पत्र के उत्तर में जयपुर के मंत्री दौलतराम ने दोनों को लिखा कि हम सेंधिया और कर दोनों के ऋणी हैं। इसलिए जो इन में से अधिक बल या रखता हो वह हमसे रुपये ले। इस उत्तर को पाकर तुकोजी ज पुर के मन्त्री के मन की बात को समझ कर सेना के साथ की ओर चले कि बीच में जिउवा दादा ने उन पर आक्रम किया। फिर तो दोनों में घोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में के कई साहसी सेनापति और योधा मारे गये और उन हार हुई। तब वह जयपुर से बाईस कोस की दूरी पर गाँव नामक स्थान में लौट आये और वहाँ एक दृढ़ दुर्ग में आश्रय लिया। उस समय अहिल्याबाई महेश्वर-क्षेत्र में थी तुकोजी का पत्र उसके पास वहीं पहुँचा। उन्होंने अपने पत्र धन और सेना की सहायता के लिए प्रार्थना की थी। समाचार के पातेही अहिल्याबाई मारे क्रोध के काँपने और बोली कि इस अपमान से मुझे इतना दुःख हुआ है जितना तुकोजी के मरने पर भी न होता। इतना कह उसी क्षण उसने पाँच लाख रुपये भेजे और साथही उस तुकोजी को एक पत्र लिखा कि तुम किसी प्रकार से विचलि न होना, मैं यहाँ से रुपये और सेना का पुल बाँधे देती हूँ

स जिस प्रकार से हो उस कृतघ्न को दमन करो और यदि तुम साहस गँवा चुके हो तो लिखो, इस बुढ़ापे में भी मैं* स्वयं आकर युद्ध करूँगी। इसके थोड़े ही दिनों के उपरान्त अहिल्याबाई ने तुकोजी की सहायता के लिए अट्ठारह सहस्र सैन्य भेजी कि जिसे पाते ही उन्होंने घोर युद्ध किया। यह युद्ध तीन महीने तक होता रहा, अन्त में तुकोजी ने वैरी पर विजय पाई और जिउवा ने पराजय स्वीकार की।

अहिल्याबाई के भण्डार में जो कुछ धन सञ्चित था, गद्दी पर बैठते समय अहिल्या ने उसपर तुलसीदल रख दिया था। एक समय राघोबा दादा ने लोभवश अहिल्याबाई से कहला भेजा कि इस समय मुझे कुछ धन की आवश्यकता है, इसलिए आप मुझे कुछ रुपये भेज दीजिए। अहिल्याबाई उसकी प्रकृति को भली-भाँति से जानती थी, इसलिए उसने कहला भेजा कि मैं अपने सञ्चित धन पर तुलसीदल रख चुकी हूँ, अब मैं उसमें से कुछ भी नहीं ले सकती, क्योंकि वह कृष्णार्पण हो चुका है। तथापि आप ब्राह्मण हैं, यदि दान लिया चाहें तो प्रसन्नता से मैं तुलसीदल और अक्षत ले सङ्कल्प करके आपको दे सकती हूँ। राघोबा ने इस बात से चिढ़ कर अहिल्याबाई को लिखा कि मैं दान लेनेवाला प्रतिग्रही ब्राह्मण नहीं हू; या तो मुझे रुपये भेजो, नहीं तो युद्ध के लिए तत्पर हो। इसके उत्तर में अहिल्याबाई ने कहला भेजा कि युद्ध में प्राण जायँ तो जायँ परन्तु सङ्कल्पित धन तो मैं यों न उठा

* इस समय अहिल्याबाई की अवस्था ५८ वर्ष की थी।

विधवा की विकलता और दीनता से अहिल्या॰ ऐसा द्रवीभूत हुआ, कि उसने उस विधवा॰ वस्त्रादि देकर विदा किया और तुकोजी को ॰ निर्दयता और कठोरता को मेरे राज्य में स्थान न॰ इस आज्ञा को पाकर विवश हो तुकोजी को ॰ विरत होना पड़ा। अहिल्या बाई के उदार व्यव॰ कर इन्दौर की प्रजामात्र उसको धन्य धन्य ॰ और एक समय उसके राज्य में दो अति धनवान॰ दो विधवाओं के अतिरिक्त उनका भी और कोई॰ था; और उन विधवाओं ने दत्तक पुत्र भी नहीं॰ अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति अहिल्याबाई को देनी ॰ सम्पत्ति के लेने में उसे कोई दोष भी न था। परन्तु लेना स्वीकार न कर यह कहा कि मैं तो तुम्हारा॰ परन्तु तुम्हें उपदेश देती हूँ कि तुम स्वयं अपने धन॰ में लगाओ कि जिससे तुम्हारा लोक परलोक बने ॰ में यश हो। उन विधवाओं ने भी अहिल्याबाई की अनुसार अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को उत्तम कार्य्यों में ॰ को प्राप्त किया।

हुलकर वंशीय दलपतियों के साथ पहिले कोई॰ न था। केवल समय समय पर लोगों को यथोचि॰ भण्डार से मिला करता था। परन्तु इसमें दोनों (ले॰ वाले) को बड़ा ही असुबीता होता था।

ग्य यह राजगद्दी पर बैठी थी, उस समय इन्दौर का एक छोटा नगर था। उसी के समय में यही इन्दौर एक उत्तम नगर हो ा। उसके शासन और सद्व्यवहार के गुण से देश-देशान्तरों व्यापारी लोग अनेक प्रकार की वस्तुओं को लाते और बेचते । अहिल्याबाई की उन पर सदा कृपा-दृष्टि रहती थी। उसे इस त का विशेष ध्यान रहता था कि बाहर से यदि कोई अपनी ठ से धन लगा कर आया है तो उसे उसके व्यय के अनुसार भ भी हो, न कि केवल हानि। देश की उन्नति और वाणिज्य ी वृद्धि का होना ऐसीही राजनीति पर निर्भर है। उसके शासन- ाल में कोई किसी को दुःख नहीं दे सकता था। यदि कोई सा ही बलवान् किसी निर्बल पर किसी प्रकार का बलात्कार रता और उसकी सूचना अहिल्याबाई को पहुँचती, तो वह वश्य ही उस दुष्ट को दण्ड देती थी। वह धन सञ्चय करने से तनी प्रसन्न नहीं होती थी कि जितनी न्याय करने और प्रजा ा पालन करने से सन्तुष्ट होती थी।

एक समय तुकोजीराव का कटक इन्दौर के पास पड़ा हुआ ा। वहाँ उन्होंने सुना कि देवीचन्द नामक कोई साहूकार र गया है, परन्तु उसके कोई पुत्र नहीं है। उस समय के चलित राज-नियम के अनुसार उन्होंने देवीचन्द की सम्पत्ति ले लेनी चाही। उस समय अहिल्याबाई मिमिर नामक स्थान में थी। तुकोजी के ऐसे अभिप्राय के सुनते ही देवीचन्द की विधवा ने अहिल्याबाई से जाकर अपनी सारी विपत्ति रो सुनाई। उस

दूँगी। इस उत्तर को पाते ही राघोबा अहिल्याबाई से युद्ध के लिये तत्पर हुआ। इसे सुनते ही वह भी वीर-वेष धारण कर अस्त्र शस्त्र ले घोड़े पर चढ़ पाँच सौ दासियों के साथ रणभूमि में उपस्थित हुई। उस समय उसने स्त्रियों के अतिरिक्त एक भी पुरुष को अपने साथ नहीं लिया था। इसका तात्पर्य यह था कि महाराष्ट्रगण अबलाओं से कदापि युद्ध न करेंगे। बस, जैसा उसने सोचा था वैसा ही हुआ। राघोबा के योद्धागण स्त्रियों से युद्ध करने में सम्मत न हुए। तब विवश हो उसने अहिल्याबाई से पूछा कि आप की सेना कहाँ है? उसने उत्तर दिया कि मेरे पूर्वजगण पेशवा के सेवक थे, इसलिए यह मैं नहीं चाहती कि तुम से युद्ध करूँ। हाँ धर्म नहीं छोड़ सकती और न दान किया हुआ धन यों लूटने दूँगी; इसलिए मैं उपस्थित हूँ, अब आप मुझे मार कर भले ही सब धन ले लें, परन्तु प्राण रहते तो मैं एक टका भी न दूँगी। अहिल्याबाई के इस उत्तर से वह बड़ा ही लज्जित हुआ और उसने अहिल्याबाई को सन्तोष कर उसे लौटा दिया।

अहिल्याबाई की सभा में अन्यान्य राजाओं के जो दूत रहते थे, वे उसकी बुद्धिमानी और नम्रता से सदा प्रसन्न रहते थे। उसके दूत भी पूना, हैदराबाद, श्रीरङ्गपट्टन, नागपुर, कलकत्ता आदि राजधानियों में रह कर परस्पर का मेल जोल बनाये रखते थे।

अहिल्याबाई केवल दानी या धर्मात्मा ही नहीं थी। उसके कुल राज्य में [illegible] [illegible] के साथ उपाय थे।

य यह राजगद्दी पर बैठी थी, उस समय इन्दौर का एक छोटा
नगर था। उसी के समय में यही इन्दौर एक उत्तम नगर हो
। उसके शासन और सद्व्यवहार के गुण से देश-देशान्तरों
व्यापारी लोग अनेक प्रकार की वस्तुओं को लाते और बेचते
। अहिल्याबाई की उन पर सदा कृपा-दृष्टि रहती थी। उसे इस
त का विशेष ध्यान रहता था कि बाहर से यदि कोई अपनी
ठ से धन लगा कर आया है तो उसे उसके व्यय के अनुसार
भ भी हो, न कि केवल हानि। देश की उन्नति और वाणिज्य
वृद्धि का होना ऐसीही राजनीति पर निर्भर है। उसके शासन-
ल में कोई किसी को दुःख नहीं दे सकता था। यदि कोई
सा ही बलवान् किसी निर्बल पर किसी प्रकार का बलात्कार
रता और उसकी सूचना अहिल्याबाई को पहुँचती, तो वह
वश्य ही उस दुष्ट को दण्ड देती थी। वह धन सञ्चय करने से
तनी प्रसन्न नहीं होती थी कि जितनी न्याय करने और प्रजा
पालन करने से सन्तुष्ट होती थी।

एक समय तुकोजीराव का कटक इन्दौर के पास पड़ा हुआ
ा। वहाँ उन्होंने सुना कि देवीचन्द नामक कोई साहूकार
र गया है, परन्तु उसके कोई पुत्र नहीं है। उस समय के
चलित राज-नियम के अनुसार उन्होंने देवीचन्द की सम्पत्ति
लेनी चाही। उस समय अहिल्याबाई मिमिर नामक स्थान में
ी। तुकोजी के ऐसे अभिप्राय के सुनते ही देवीचन्द की विधवा
अहिल्याबाई से आकर अपनी सारी विपत्ति रो सुनाई। उस

विधवा की विकलता और दीनता से अहिल्याबाई का कोमल
ऐसा द्रवीभूत हुआ, कि उसने उस विधवा को
वस्त्रादि देकर विदा किया और तुकोजी को लिख भेजा
निर्दयता और कठोरता को मेरे राज्य में स्थान न मिलना चा
इस आज्ञा को पाकर विवश हो तुकोजी को अपनी लालसा
विरत होना पड़ा। अहिल्या बाई के उदार व्यवहार से सन्तु
कर इन्दौर की प्रजामात्र उसको धन्य धन्य कहने लगी।
और एक समय उसके राज्य में दो अति धनवान महाजन मर
दो विधवाओं के अतिरिक्त उनका भी और कोई
था; और उन विधवाओं ने दत्तक पुत्र भी नहीं लिया था।
अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति अहिल्याबाई को देनी चाही थी
सम्पत्ति के लेने में उसे कोई दोष भी न था। परन्तु उसने
लेना स्वीकार न कर यह कहा कि मैं तो तुम्हारा धन न
परन्तु तुम्हें उपदेश देती हूँ कि तुम स्वयं अपने धन को ऐसे
में लगाओ कि जिससे तुम्हारा लोक परलोक बने और दोनों
में यश हो। उन विधवाओं ने भी अहिल्याबाई की अनु
अनुसार अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को उत्तम कार्यों में लगा
को प्राप्त किया।

हुलकर वंशीय दलपतियों के साथ पहिले कोई नियत
न था। केवल समय समय पर लोगों को यथोचित ध
भण्डार से मिला करता था। परन्तु इसमें दोनों (लेने
वाले) को बड़ा ही असुबीता होता था।

त झगड़े को मिटा कर सबके साथ ऐसा अच्छा प्रबन्ध कर
। कि सबके साथ मेल मिलाप भी बना रहा और सब प्रकार
झंझट भी मिट गई, तथा राजकोष का भी उत्तम प्रबन्ध
ाया ।

उस समय आस पास के अनेक ऐसे राजे महाराजे थे कि जिन
उद्दण्डता के कारण प्रजा अपना धन छिपा छिपा कर रखती थी,
कि जो कहीं राज-दरबार में यह बात प्रकट हो जायगी कि
क प्रजा के पास इतना धन है, तो राजा उसे छीन लेगा।
समय पालकी पर चढ़ कर निकलना, अथवा उत्तम तिमहले
महले घर बनवा लेना, साधारण प्रजा का काम न था, वरन्
ा यही कोई भाग्यशाली मनुष्य कर सकता था कि जो राजा
पूर्ण कृपापात्र होता था। परन्तु धन्य थी पुण्यशीला अहिल्याबाई
जो प्रजामात्र पर दया रखती और उनके साथ वात्सल्य भाव
बर्ताव करती थी। उसके राज्य में यदि कोई धनवान् होता था
उसे अहिल्याबाई अपने राज्य का गौरव और प्रतिष्ठा समझ
पना कृपापात्र बनाती और उसकी भविष्य उन्नति पर भी पूरा
ा ध्यान रखती थी।

भारतवर्ष की अनेक जङ्गली जातियों में से भील जाति लुटेरों
बड़ी प्रसिद्ध है, यहाँ तक कि ब्रिटिश गवर्नमेंट के ऐसे शान्तिमय
ज्य में भी अब तक अनेक स्थानों में भीलों का उपद्रव वर्त्तमान
। ऐसे निरापद काल में जब पथिकों को भील-जाति की लूट
ार से भयभीत होना पड़ता है तो उस समय भीलों का जैसा

लविलाती थी। उसने बार बार अपनी कन्या से विनय किया क "पुत्री! अब केवल तू ही मेरे इस बुढ़ापे की आधार है, बिना रे क्षण भर भी इस दुःखमय जगत् में मेरा निर्वाह न होगा। य! अब मेरा एक भी आधार नहीं है जिसके सहारे यह प्राण-खेरू टिक सके। इसलिए तू अपने इस संकल्प को मेरी दुःखमय दशा देखकर छोड़ दे"। इत्यादि अनेक प्रकार से उसने अपनी त्री को सती होने से रोका, परन्तु मच्छाबाई ने एक भी न सुना और बड़ी दृढ़ता और स्नेह भरे वाक्यों से कहा—"माँ, अब तुम और कितने दिन जीओगी, दो चार वर्ष में तुम्हारा भी अन्त होना है; इसलिए जो इस समय तुम मुझे सती होने से रोकोगी तो न जाने कितने वर्षों तक मुझे इस घोर दुःखमय जीवन को व्यतीत करना पड़ेगा; सोचो तो यह समय मेरे लिए कैसा दुःखमय होगा! परन्तु आज यदि मेरा सङ्कल्प ईश्वर ने पूरा कर दिया तो संसार से यशपूर्वक पति के साथ मैं सत्यलोक को चली जाऊँगी। इसलिए माता, मेरी भलाई,मेरे यश और मेरे कल्याण के लिए तुम मुझे आज्ञा दो और बिदा करो, जिसमें मैं तुम्हारे देखते देखते स्त्रीधर्म का पूरा पूरा निर्वाह करती और विजय का डङ्का बजाती हुई सुख और शान्ति के सहित चिरकाल के लिए अपने सत्त से सतीलोक में जा बसूँ"। जब अहिल्याबाई ने देखा कि मैं किसी प्रकार से अपनी कन्या को सती होने की प्रतिज्ञा से निवृत्त नहीं कर सकती, तब उसने विवश होकर कातर स्वर से मच्छाबाई को सती होने की आज्ञा दी।

आज्ञा के पाते ही सब संस्कार और सती होने का प्रबंध होने लगा। वह अहिल्याबाई कि जो जीवमात्र के कष्ट को नहीं देख सकती थी, वरन् उनकी रक्षा का यत्न करती थी, आज वही अपनी एक मात्र जीवनावलम्ब प्रतिमा को विसर्जन करने के लिए स्वयं नर्मदा के तट पर उपस्थित हुई। चन्दन, अगर आदि काष्ठों से चिता बनाई गई और मच्छाबाई अपने पति के शव को विधि-पूर्वक अपनी गोद में लेकर उस पर जा बैठी। चिता में अग्नि लगाई गई; घृत-कर्पूरादि के स्पर्श से देखते देखते वह चारों ओर से लपलपाती और धकधकाती अग्नि-शिखाओं से घिर गई और मच्छाबाई के कोमल अङ्ग को भस्मीभूत करने लगी। उस समय चारों ओर शंख, घण्टा, भेरी, नरसिंहा आदि के घोर शब्द को भेद करता हुआ अहिल्याबाई का हृदयविदारक विलाप-दर्शक मण्डली को विकल और विह्वल कर रहा था। वह मोहवश बार बार चिता में कूदने का उद्योग करती थी, परन्तु दोनों ओर से दो ब्राह्मण उसे दृढ़ता से पकड़े हुए थे। जब चिता केवल अङ्गारों की ढेरी सी हो गई, उस समय अहिल्याबाई पछाड़ खा धम्म से पृथ्वी पर गिर कर मूर्च्छित हो गई। अनेक प्रयत्न करने पर भी थोड़ी देर तक उसकी मूर्च्छा न टूटी। अन्त में थोड़े समय के उपरान्त उसे चैतन्य तो हुआ, परन्तु उसकी भ्रान्ति और विकलता ज्यों की त्यों बनी रही। बड़े कष्ट से लोग उसे राजभवन में ले आये, परन्तु उसके शोक में कुछ भी न्यूनता न हुई। तीन दिन पर्यन्त बिना अन्न जल के वह उसी प्रकार

ती, बिलबिलाती, छाती पीटती और पछाड़ें खाती रही। सके दास, दासी, राज-कर्मचारी और ब्राह्मण पण्डित आदिक से अनेक प्रकार से धैर्य दिलाते और शान्ति करते रहे। परन्तु सका सन्तप्त हृदय किसी प्रकार भी शान्त नहीं होता था। ई दिनों के उपरान्त धीरे धीरे उसका हृदय स्वयं कुछ कुछ ान्त होने लगा। तब उसने अपनी पुत्री और जामाता के स्मरर्थ एक अति रमणीय मन्दिर बनवाया, जिसके शिल्प-नैपुण्य ो देख आज दिन भी बड़े बड़े शिल्पकार चकित और विस्मित होते हैं।

एक तो पहिले ही से अहिल्याबाई किसी प्रकार के भोग विलास या राजकीय सुख में लिप्त न थी, वरन् अति सामान्य रूप से ने जीवन का निर्वाह करती थी, परन्तु अब तो कन्या के शोक जो कुछ उसके चित्त की शान्ति थी वह भी न रही, वह अब वल अपनी प्राण रक्षा भर किसी प्रकार से कर लेती परन्तु सके धर्मनिष्ठा, दृढ़ता, सहिष्णुता, न्यायपरता आदि गुणों में सी प्रकार की त्रुटि या न्यूनता अन्त काल पर्यन्त कभी भी हुई।

यों ही कन्या के मरने पर तीन वर्ष पर्यन्त रामराज्य करके ाठ वर्ष की अवस्था में (सन् १७८५ ई०) में इस नश्वर देह को ाग, अपने विमल यश की पताका उड़ाती हुई अहिल्याबाई नत्य लोक को पधार गई।

सर ऐज़क न्यूटन*

भारतवर्ष में जिस समय कमलाकर भट्ट† ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्ततत्त्वविवेक ‡ को रचा था, उस समय योरप में न्यूटन की अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी। उसका पिता उसकी बाल्यावस्था ही में मर गया था, परन्तु बुद्धिमती माता की कृपा से बाल्यावस्था ही में उसके हृदय में अनेक गुणों के अंकुर उत्पन्न हो गये थे। बारह वर्ष की अवस्था में अर्थात् सन् १६५४ ई० में, उस की माता ने उसे कोलसवर्थ नगर में ग्रेन्थम के विद्यालय में जहाँ कि उसका जन्म स्थान है, भेजा। वहाँ वह यन्त्रकला में ऐसा निपुण हुआ कि लोगों को उसकी बुद्धि पर आश्चर्य होने लगा। और विद्यार्थी तो अवकाश पाने पर खेल कूद कर अपने समय को नष्ट करते थे, परन्तु न्यूटन उस समय जल यन्त्र, वायुयन्त्र इत्यादि की रचना में नियुक्त रहता था। वह यन्त्ररचना में ऐसा उत्साही था कि लोहारों की भाँति बसूला, रेती इत्यादि यन्त्रों को भी सदा अपने पास रखता था। उसके पड़ोस में एक पवन की चक्की थी। उसे देख कर उसने अपने हाथ से वैसी ही एक छोटी सी बहुत ही सुन्दर चक्की बना ली। वह अपनी चक्की को कभी

---

*महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी लिखित।

† भारतवर्ष में यह बड़ा प्रख्यात गणितज्ञ हो गया है। इसके पिता का नाम नृसिंहशास्त्री था। इसने अपने बड़े भाई दिवाकर दैवज्ञ से ज्योतिषशास्त्र पढ़ा था।

‡ यह ग्रन्थ जोकि अनेक नई नई उपपत्तियों और युक्तियों से विभूषित है काशी जी में शाके १८५० में रचना किया गया था।

कभी छप्पर के ऊपर रख देता था और जब वह वायु के वेग से चलने लगती तो अपनी रचना पर मन ही मन आनन्द में मग्न हो जाता था। किसी मित्र ने न्यूटन को एक पुराना सन्दूक दिया था, उसको उसने काट छांट कर एक घटीयन्त्र बनाया। इसका मुख तो प्रचलित घड़ी ही के सदृश था, परन्तु सूई एक लकड़ी में जकड़ी थी। यन्त्र के पीछे वाली लकड़ी पर जब जल की धारा का आघात लगता, तब लकड़ी के सङ्ग मुख पर चारों ओर सुई चला करती। भास्कराचार्य ने भी इसी प्रकार के एक "स्वयंवह" नाम के यन्त्र को अपने गोलाध्याय में जल के बल से चलने वाला बनाया है।

न्यूटन समय पर पत्र (काग़ज़) न रहने से घर की भीतों ही के ऊपर रेखागणित इत्यादि के क्षेत्रों को लिख कर उनके सिद्धान्तों को अपने मन में बैठा लिया करता था, इस कारण से उसके घर की भीत एक प्रकार की पुस्तक ही हो गई थी। अठारह वर्ष की अवस्था में वह ग्रेन्थम से केम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालेज में पढ़ने के लिए गया। वहाँ पर उसने मोटे काँच के टुकड़े के एक छेद में से प्रकाश बाहर होकर आवे तो उसका कैसा रूप होता है और प्रकाशमान् पदार्थों की प्रत्येक किरण में सात रङ्ग के अवयव वैसे ही रहते हैं जैसे कि इन्द्रधनुष में होते हैं, इन सिद्धान्तों को बड़े विस्तार से वर्णन किया।

सन् १६६५ ईसवी में केम्ब्रिज में महामारी का बड़ा भारी उपद्रव फैला। इसलिए न्यूटन भाग कर अपने घर चला गया।

वहाँ पर एक दिन यह अपनी वाटिका में टहलता था, दैवात् उसके सामने एक वृक्ष का फल टपक पड़ा, इस पर उसने अनुमान किया कि अवश्य इस पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। फिर इस आकर्षण की ओर उसका मन इतना लगा कि इस पर उसने अनेक नई नई बातों का पता लगा डाला और यह भी सिद्ध किया कि आकाश में जितने ग्रह-पिण्ड और तारे हैं वे सब परस्पर के आकर्षण ही के बल से निराधार घूमा करते हैं। न्यूटन के पहले योरप में कोई विद्वान् इस बात को नहीं जानता था कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है। भारतवर्ष के विद्वान् चिरकाल से इस बात को जानते थे कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है, परन्तु इस आकर्षण का कैसा धर्म है इस बात पर किसी का मन न गया, केवल लोग घर बैठे कविता लिख कर ग्रन्थ रचा किये, परन्तु यह किसी से न बन पड़ा कि परीक्षा के द्वारा इस आकर्षण के धर्म का पता लगावें।

सन् १६६७ ईसवी में न्यूटन फिर केम्ब्रिज में आया। वहाँ पर उसकी योग्यता देख कर लोगों ने उसे विद्या-सम्बन्धिनी एक सर्वोच्च पदवी दी। दो वर्ष के अनन्तर यह केम्ब्रिज ही में गणित-शास्त्र का प्रधान अध्यापक हुआ।

सन् १६८३ ई० में उसने लयाटिन भाषा में एक "प्रिन्सिपिया-मेथेमेटिका" नाम के अपूर्व गणित के ग्रन्थ की रचना की, जिस पर आज तक अनेक टीकाएं और टिप्पणियाँ बनती चली आती हैं।

सन् १६९५ ई० में वहाँ की गवर्नमेंट ने उसे अपनी टकसाल का अधिकारी बनाया था।

यद्यपि वह इतना भारी विद्वान् था तथापि उसके शरीर में अहङ्कार व अभिमान का लेश भी नहीं था। इसी कारण वह सर्वप्रिय हो गया था कि जहाँ जाता वहीं दस बीस विद्वान् उसे घेर लेते थे। सच पूछिए तो उसे ऋषि कहना चाहिए। एक दिन रात्रि के समय वह कहीं बाहर चला गया था; चौकी पर उसके लिखे हुए अनेक पत्र पड़े थे और मोमबत्ती जलती थी। उसका कुत्ता, जिसे वह बहुत चाहता था और जिसका नाम हीरा था, न जाने क्या समझा कि एकाएक चौकी पर चौंक पड़ा; इससे बत्ती गिर पड़ी और सब पत्र भस्म हो गये। आने पर न्यूटन ने उस कुत्ते से केवल इतना ही कहा कि तुझे क्या ज्ञान है कि मैंने कितने परिश्रम से कई वर्षों में लिख कर इनको पूरा किया था।

सन् १७११ ई० में गणित के एक नियम के ऊपर लेबनिज़ से, जो कि जर्मन देश का एक ही प्रसिद्ध गणित-शास्त्र का विद्वान् था, और न्यूटन से विवाद हो गया। अनेक विद्वान् कहते थे कि यह नियम न्यूटन का आविष्कृत है और अनेक विज्ञ कहते थे कि यह लेबनिज़ का आविष्कृत है। निदान इसका विचार लंदन की रायल सोसायटी में किया गया। उस समय पूरा पूरा विचार न होने से उसका आविष्कर्ता न्यूटन ही ठहराया गया और महासभा
रों और विज्ञापन पत्र भेजे गये कि आज से सबको विदित हो कि यह नियम न्यूटन का आविष्कृत है।

इसके अनन्तर जर्म्मन देश के महाराज ने लंदन में सूचना दी कि इस विषय पर उत्तम रीति से पुनः विचार करना चाहिए। अन्त में दोनों ओर के सभ्यों ने एक मध्यस्थ द्वारा (जिसके यहाँ न्यूटन और लेबनिज़ दोनों प्रायः अपने अपने सिद्धान्तों को पत्र द्वारा लिख कर भेजा करते थे) दोनों के पत्रों को देख कर सिद्ध किया कि दोनों ने दूसरे के सिद्धान्त वा नियम को बिना देखे ही अपनी अपनी बुद्धि से इस नियम को आविष्कार किया है, इस लिए दोनों को इसका स्वतन्त्र कर्ता कहना चाहिए। परन्तु बड़े खेद की बात है कि इस अन्तिम विचार (फ़ैसले) के प्रचलित होने के पूर्व ही महावैरी काल ने लेबनिज़ को अपना ग्रास बना लिया था। जो हो, परन्तु आजकल तो सभी विद्वानों के मत से उस नियम का लेबनिज़ ही माना जाता है और उसके आदर के लिए उस नियम को लोग Leibnitz's Theorem कहते हैं।

न्यूटन सन् १७२७ ईसवी में पचासी वर्ष की अवस्था में इस असार संसार को तुच्छ समझ कर परलोक को सिधारा। मरने के पहिले बीस दिन पर्यन्त वह पीड़ित था। मरती समय उसका यह अन्तिम वाक्य था कि "लोग मुझे चाहे जैसा विज्ञ समझते हों, परन्तु मेरी तो दशा ऐसी थी कि जैसे कोई बालक समुद्र के तट पर खड़ा हो, दैवयोग से तरङ्गों के द्वारा कभी उसके हाथ चिकना कङ्कण और कभी सीपी आजाय; उस प्रकार मैं भी मुग्ध बालक सा अपार महा-ज्ञान समुद्र के तट पर खड़ा था, जिसका कुछ भी वारापार नहीं सूझता था, केवल दैवयोग से थोड़ा सा ज्ञान-रत्न मेरे हाथ लग गया"।

नीति-विषयक इतिहास*

—:o:—

दोहा।

मूरख कैसेऊ बली, पण्डित अबल शरीर।
सदा प्रबल पण्डित तहाँ, अबुध अबल कुबीर॥ १॥

रह्यो एक पञ्चानन[1] बन में॥
सो नित प्रलय करत मृगगन में॥
तब सबही मिलि कियो विचार।
नित प्रति इक मृग देहिं अहार॥ १॥
मृगन जाय मृगपति[2] सों भाख्यो।
प्रभु हम एक नियम अभिलाख्यो॥
नित प्रति लेहु एक मृग आप।
देहु न और मृगन कहँ ताप॥२॥
एवमस्तु केहरि कहि दीनों।
ता दिन सों नित यह ब्रत लीनों॥
एक दिन रही ससा[3] की पारी।
ताने मन यह बात विचारी॥ ३॥
ऐसी जुगत करैं चित लाय।
जथा जनम को कंटक जाय॥

* बाबू गोपालचन्द्र लिखित।

१ सिंह। २ सिंह। ३ खरहा, खरगोश।

समै टारि कै धीरे धीरे।
काँपत गयो सिंह के नीरे ॥ ४ ॥
बोल्यो बाघ कोप सों पुष्ट।
इतो अबेर करी क्यों दुष्ट ॥
ससा भयो तब वचन सुनावत।
प्रभु मैं रह्यौ आप ढिंग आवत ॥ ५ ॥
तुम सों अपर मिल्यो हरि[1] राह।
तिन पकरयो मोहि भोजन चाह ॥
तब हम कह्यो हाल सब बन को।
नाथ कृपा मृगगन के पन को ॥ ६ ॥
जान देहु मोहि स्वामी पास।
ऐहौं तिन सों कहि इतिहास ॥
सुनि सो बहु गरज्यो भय छावन।
सपथ करी तब दीनो आवन ॥ ७ ॥
इतनी बात सुनत सो नाहर।
कहत सचोप[2] कोप करि जाहर ॥
रे खरमति खरगोश अयाने[3]।
मो सम अपर कहत बिन जाने ॥ ८ ॥
तिहि दिखाउ ता सठ संग लरिहौं।
ताहि भच्छि तोहि भच्छन करिहौं ॥
सुनि सो ससक सिंह के सङ्ग।
चल्यो बिपिनमग पूरि उमङ्ग ॥ ९ ॥

---

१ सिंह। २ ताव के साथ। ३ मूर्ख, नादान।

महा कूप लखि बोलत भयो।
प्रभु यह नाहर या महँ गयो॥
सुनि सो जाय लखी निज छाया।
अपर जानि मधि कूदि नसाया॥ १०॥

दोहा।

इमि मूरख केहरि हन्यो, सस पण्डित बन माहिं।
यासों जग में बुद्धि बल, सब बल अधिक सदाहिं॥ २॥
बुद्धिमान विपसहु परे, अनुपम युक्ति विचार।
समय काज साधत सुघर, डारत अबुध बिगारि॥ ३॥

चौपाई।

रह्यौ महाबन में इक बारन[1]
ताके संग मतङ्ग[2] हजारन॥
सो ग्रीसम जल बिन दुख पाय।
भ्रमत लख्यो बन महा तलाय॥ १॥
तहाँ रोज जल क्रीड़न आवै।
जाति वृन्द[3] सों धूम मचावै॥
ता सर तट बहु ससक निवास।
होन लगे ते पद सों नास॥ २॥
बन्धु वर्ग कों लखिकै छीन।
भये तहाँ के सस दुख पीन॥
तब इक वृद्ध रह्यौ तिन माहीं।
सो विचारि के चल्यो तहाँ हीं॥ ३॥

---

१ हाथी। २ हाथी। ३ समुदाय, झुण्ड।

ससि कौं कहहु छमैं अपराधू ।
हम अति कीनो कर्म्म असाधू ॥ ९ ॥
अब कबहूँ नहिं या मग ऐहैं ।
अनत कहूँ जल पीवन जैहैं ॥
कहत ससा गज हैं अति ज्ञानी ।
देव देव की आज्ञा मानी ॥ १० ॥
चलहु कराव हुँ प्रभु को दरसन ।
जासों होय सकल अघ मरसन [1] ॥
इमि कहि तेहि सर ढिग ले आयो ।
जल कम्पत बिधु [2] बिम्ब [3] दिखायो ॥ ११ ॥
लखहु कोप कै काँपत ऐसे ।
अबै करत हम सांत बिनै से ॥
हे ससांक [4] देवन के देव ।
गज अघ किय जाने बिन भेव ॥ १२ ॥
सो प्रभु क्षमा करहु अपराधु ।
अब न करैगो करम असाधु ॥
इमि कहि गजहिं फेरि लै आयो ।
बुधि प्रताप गुरुकाल बचायो ॥ १३ ॥

दोहा ।

मानिक मोती हीर अरु, जिते रतन जग माहिँ ।
सब बस्तुन को मोल जग, मोल बुद्धि को नाहिं ॥ ४ ॥

---

१ संशोधन । २ चन्द्रमा । ३ छाया, परछाईं । ४ चन्द्रमा

तब विचारि सो मूसक ज्ञानी ।
मारजार [१] सों बोल्यो बानी ॥ ५ ॥
तुम सरबज्ञ अहौ मतिमान ।
हम बरनत सो सुनहु सुजान ॥
लखि तुव बचन मोहि दुख दाहत ।
तासों तुमहिं निकारन चाहत ॥ ६ ॥
पै यह शत्रु उभय [२] मम घोर ।
अहैं लखहु तव अरु मम ठोर ॥
तासों आप अभै जो देहु ।
तौ हम काज करैं सह नेहु ॥ ७ ॥
बंधन काटि छुटावैं आसु [३] ।
मोहिं तजि इनहिं करहु तुम नासु ॥
तब बिलार निज जीवन जानि ।
बोल्यो बानी तेहि सनमानि ॥ ८ ॥
बन्धु कहे तुम नीके बैन ।
मोहि छुड़ावहु ताहि भय है न ॥
मूसक मारजार ढिंग गयो ।
जालहिं धीरे काटत भयो ॥९॥
मूसहिं लखि बिलार की गोद ।
गये उलूक नकुल तजि मोद ॥
कहत आखु मरि जल्दी कर ।
बन्धन काटहु नेकु न डरहु ॥ १० ॥

---

१ बिलाव । २ दोनों । ३ शीघ्र ।

गणपति वाहन कहे सुलच्छन ।
तुमहिं बिसासे को कुल भच्छन ॥
तासों समय पाय हम तात ।
करब तिहारो बन्धन घात ॥ ११ ॥
इहि विधि कहत जोति वुधि ठाटत ।
लखत समय कहँ बन्धन काटत ॥
जब आयो व्याधा लै दण्ड ।
काल सरिस कालो वपु चण्ड[1] ॥ १२ ॥
लखि बिलार डरि बोल्यो वैन ।
काटु मित्र न तु प्रान रहै न ॥
तबहिं काटि दुत[2] बिल में भागो ।
तिमि बिड़ाल भागो भय पागो ॥ १३ ॥

दोहा ।

मूसक वुद्धि प्रताप सों, राख्यो अपनो प्रान ।
तासों पण्डित राखिये, साधन काज महान ॥ ६ ॥
धन्य दूरदरसी मनुज, धन्य प्राप्त कालज्ञ ।
ते अधन्य संसार जे, दीरघ सूत्री[3] अज्ञ ॥ ७ ॥

चौपाई ।

रह्यो गाँव में सर इक भारी ।
बरसाकाल अगम तहँ बारी[4] ॥
जेठ मास होवे जल छीन ।
धीवर आय फँसावहिं मीन ॥ १ ॥

---

१ भयानक । २ जल्दी । ३ आलसी, शिथिल । ४ जल ।

तहँ झख[1] बसहिँ अनेक प्रकार ।
विन कर झिंम जस संसार ॥
तहँ बरषा रितु बीतत आली ।
कहो दूरदरसी यह बानी ॥ २ ॥
अब इत रहन उचित नहिँ भाई ।
चलहु अनत जहँ जल अधिकाई ॥
बरसा काल जात सुख पुए ।
आय फँसै है धीवर दुष्ट ॥ ३ ॥
तबहि प्राप्तकालज्ञ कहि इमि ।
अबहीं सों अकुलात कहो किमि ।
जबै सबै यह या जल देहै ।
तब करिहै जो उचित दिखैहै ॥ ४ ॥
कहत दीर्घसूत्री यह ऐसे ।
वृथा विचार करत सब कैसे ॥
इत रहिये तजि करतब धर्म ।
जहँ जैहैं तहँ जैहै कर्म ॥ ५ ॥
कर्म लिखी सब है है बात ।
तातैं करतब अनुचित तात ॥
बचन दुहन के सुनि ता ठौर ।
गयो दूरदरसी जल और ॥ ६ ॥
लघुजल धीवर जाल पसारी ।
फँसे मीन जे रहे दुखारी ॥

---
१ मगर, मच्छ ।

मूरख कोउ कारज करै, पूरो एक न होय ।
बुध साधै सब काज को, बिना प्रयासहिं[1] सोय ॥ ११ ॥

कुण्डलिया ।

हरि लोहा पञ्जर[2] परयो, तेहि देख्यो इक विप्र ।
टेरि करी विनती घनी, द्विज तेहि काढ़यो छिप्र[3] ॥
द्विज तेहि काढ़्यो छिप्र, तबै सो चाह्यो भच्छन ।
डरि यह बोल्यो अज्ञ, सिह तुम नीति विचच्छन ॥
हम कीनो उपकार, खान चाहत तुम बनि अरि ।
यह कोउ बिधि नहिं उचित, कहै चित में समझहु हरि ॥ १ ॥
मूरख ते दोउ तहँ तबै, करन चहे मध्यस्थ ।
चले हरिन पण्डित लग्यो, सो लखि भग्यो अस्वस्थ ॥
सो लखि भग्यो अस्वस्थ, टेरि हरि अभय दई तब ।
इमि बोल्यो मृग बिहँसि विप्र सों सुनि हवाल सब ॥
मोहि दिखाउ जिमि पर्‍यो, रहै सब कहहुँ देखि चख ।
दुज तिमि किय जब भग्यो, हरिन कहि भागहु मूरख ॥ २ ॥

दोहा ।

इमि मृग पण्डित ने रख्यो, निज अरु द्विज को प्रान ।
खुलि कै पुनि बन्धन परयो, नाहर मूर्ख प्रधान ॥ १२ ॥
नासे खल उपकार कहँ, वस्तुहि पाय बिचार ।
उपकारी अनहित करत, खण्ड खण्ड निरधार ॥ १३ ॥

---

१ श्रम । २ पिंजरा । ३ जल्दी ।

अनसन[1] व्रत करि अब हम बैठे ।
तपबल परे ज्योति महँ पैठे ॥ ५ ॥
है इक कङ्कन पास हमारे ।
देत तुमहिं लखि अयन तुम्हारे ॥
सुनि पुनि अब लोभ हित धायो ।
परयो पङ्क सब केहरि खायो ॥ ६ ॥

दोहा ।

सिंह हन्यो विश्वासतें विप्र परयो ता मुक्ख ।
यासों दुष्ट विश्वास को, करहिं लहहिं ते दुक्ख ॥ १५ ॥
बन्धन बर नृपन में, जैसे होय विरोध ।
सो इनकी उनकी करैं दुष्टहि नित यह सोध ॥ १६ ॥

चौपाई ।

एक द्वीप के खग को पालक ।
रह्यो हंसवर परिकुल घालक ॥
सो इक दिवस सभा आसीन ।
सोभ्यो पच्छिन सह बल पीन ॥ १ ॥
तहँ बक एक आसु चलि आयो ।
हंसराज पग सीस नवायो ॥
बैठो नृप की आज्ञा पाय ।
तब तासों बोलो खगराय ॥ २ ॥
कहु बक नई देस की बात ।
बोल्यो तब वह बपु अवदात[2] ॥

१ अनाहार । २ श्वेत, सफेद ।

अहै अपूर्व बारता एक ।
सुनहु करहु पुनि धरि नृप टेक ॥ ३ ॥
मैं देसाटन करत महीप ।
गयो लखन हित जम्बूदीप ॥
फिरत मिले तहँ के खग मोहि ।
ते इमि बोले मो कहँ जोहिं ॥ ४ ॥
को तूं बक है कहँ सो आयो ।
तब हम अपनो हाल सुनायो ॥
महाराज को नाम बखानौ ।
तिनके देस बसत मोहि जानौ ॥ ५ ॥
तब तिन कह्यो मोहि गुन भौन ।
दोउ दीपन में सुन्दर कौन ॥
तब हम कह्यो दीप मम जोई ।
ता सम यह कि छुद्र महि होई ॥ ६ ॥
स्वर्ग अधिक मम देस रसाल ।
इन्द्र अधिक भूपाल मराल ॥
सुनि ते परम कोपि बल छाए ।
नाथ मोहिं मारन हित धाए ॥ ७ ॥
स्वामी मोर मोर महराज ।
तेहि निन्दत पापी सिरताज ॥
कहँ को अहै हंस वह भूप ।
कौन दीप वह स्वर्ग सरूप ॥ ८ ॥

रामि कहि कै बहु विधि दै त्रास।
मोहि ले गए मोर के पास॥
तहँ देखे खग वृन्द सुभेख।
सेवहिं प्रभुहिं हरहि जिमि सेख॥ ९॥
वृद्ध गृद्ध इक मन्त्री तासु।
मोहि देखि सो बोल्यो चासु॥
रे बक, हंस भूप नृप कौन।
मन्त्री मुख्य तासु है कौन॥ १०॥
तब हम कह्यो सुनहु खगराज।
चक्रवाक मन्त्री सिरताज॥
सुनि सो कह्यै ताहि हम जाना।
है मम देखो कोक[1] सयाना॥ ११॥
इतने में सुन बोल्यो ऐसे।
हंसहि खगपति पदवी कैसे॥
केकीपति[2] तुम सनमुख केकी।
समरथ अपर भूप कहिये की॥ १२॥
तब हम कहा कहा जग माहीं।
पक्षहि होत वीर नृप नाहीं॥
जौ मन में घमण्ड अधिकाई।
तौ मम प्रभु सों करहु लराई॥ १३॥
हँसि बोल्यो तब सो खगराज।
कहु निज नृपहि सजै रनसाज॥

---

१ चकवा। २ मोर।

तव हम कह्यो कहत हम जाय।
तुमहु देहु निज दूत पठाय ॥ १४ ॥
सुनि सो कहत मोर मति भान।
दूत होय तित जैहै कौन ॥
गृद्ध कह्यो हैं दूत अनेक।
विप्र उचित पठवन सविवेक ॥ १५ ॥
तव सिखि[1] सुकहि[2] कह्यो वक संग।
जाय कहहु नृप चाहत जंग ॥
इमि सुनिके मयूर की वानी।
बोल्यो कीर[3] सुनहु विज्ञानी ॥ १६ ॥
हम जैहैं बनि दूत सुढंग।
पै नहिं यह वक खल के संग।
खल को संग करै जो साधु।
विनसै अवस विना अपराधु ॥ १७ ॥

दोहा।

सज्जन पावत दुःख हैं, पाप करत खल क्षुद्र।
रावन ने सीता हरी, बाँध्यो गयो समुद्र ॥

चौपाई।

हंस काक इक पादप ऊपर।
रहत रहे कोउ काक न भू पर ॥
तहाँ बीर कोउ धनु सर धरे।
सोइ रहो सोई तरु तरे ॥ १८ ॥

---

१ मोर। २ तोता सुग्गा। ३ तोता।

ता मुख धूप परी बिनसाय।
निरखि हंस उर उपजी दाय॥
पच्छ पसारि धूप दुख लोपो।
सो लखि कै खल बायस[1] कोपो॥ १९॥
लुल्यो पथिक मुख लखि बिट[2] करि कै।
मार्‍यो तुष महा डर धरि कै॥
सो सकोपि उठि लख्यो मराल।
सर हनि हत्यो न जानत हाल॥ २०॥
तासों नहिं जैहों बक संग।
तब हम तेहि इमि कह्यो सुढंग॥
सुक तुम मित्र कहत हौ कैसे।
तब यह हमसों बोल्यो ऐसे॥ २१॥

दोहा।

तुमरी दुर्जनता सबै, जाहिर बचन प्रताप।
जो दोउ नृपवर बेरतरु, बीज़ रूप हैं आप॥ १८॥

चौपाई।

तब मोहिं बिदा किये विधि आछे।
सुकहू आवत हैं है पाछे॥
यह सब बातें हृदय महँ आनिय।
करिय उचित चित में जो जानिय॥ २२॥
सुनि बक बचन गृद्ध यह बोलो।
यह खल विग्रह[3] हित महि डोलो॥

---

१ कौवा। २ विष्ठा, बीट। ३ लड़ाई।

वृथा बात में कहा लराई ।
पै यह खल सुभाव प्रभुताई ॥ २३ ॥

दोहा ।

गुरु सिच्छा मानै नहीं, नहीं कोउ सों नेहु ।
कलह करै बिनु बातही, मूरख लच्छन एहु ॥ १९ ॥

चौपाई ।

इतने में सो मोर पठायो ।
कीर मराल द्वार पै आयो ॥
द्वारपाल ने नृप सों भाख्यो ।
हंसन तेहि देखन अभिलाख्यो ॥ २४ ॥
बास करायो दूजे भौन ।
मन्त्री सँग एकान्त किय गौन ॥
तहँ लाग्यो करतव्य विचारन ।
चक्रवाक तहँ कहत मुदित मन ॥ २५ ॥
प्रथम दुर्ग [१] सजि सब रनसाज ।
तब दूतहि बोलहु नरराज ॥
सुनि खगेस सारसन बुलाय ।
सजहु दुर्ग यह कह्यो बुझाय ॥ २६ ॥
तब तिन सज्यो दुर्ग को साज ।
कह्यो तयार सबै महराज ॥
इतने में मराल के द्वार ।
आयो बायस को सरदार ॥ २७ ॥

१ किला, कोट ।

वृथा बात में कहा लराई ।
पै यह खल सुभाव प्रभुताई ॥ २३ ॥

दोहा ।

गुरु सिच्छा मानै नहीं, नहीं कोउ सों नेहु ।
कलह करै बिनु बातही, मूरख लच्छन एहु ॥ १९ ॥

चौपाई ।

इतने में सो मोर पठायो ।
कीर मराल द्वार पै आयो ॥
द्वारपाल ने नृप सों भाख्यो ।
हंसन तेहि देखन अभिलाख्यो ॥ २४ ॥
वास करायो दूजे भौन ।
मन्त्री सँग एकान्त किय गौन ॥
तहँ लाग्यो करतव्य विचारन ।
चक्रवाक तहँ कहत मुदित मन ॥ २५ ॥
प्रथम दुर्ग [1] सजि सब रनसाज ।
तब दूतहि बोलहु नरराज ॥
सुनि खगेस सारसन बुलाय ।
सजहु दुर्ग यह कह्यो बुझाय ॥ २६ ॥
तब तिन सज्यो दुर्ग को साज ।
कह्यो तयार सबै महराज ॥
इतने में मराल के द्वार ।
आयो वायस को सरदार ॥ २७ ॥

---

१ किला, कोट ।

मन्त्री कोक धरम गुनि धरज्यो ।
फिरज्यो दूत सुक हंस बिसरज्यो ॥ ३३ ॥
भूपहि जाय कथा सो बरनी ।
लग्यो मयूर बिचारन करनी ॥
तबै सभा में मन्त्री गिद्ध ।
कहत हंस सों जय नहिं सिद्ध ॥ ३४ ॥
प्रथम बलाबल सोधि समस्त ।
तब रनि करै होइ अरि अस्त ॥
भूप कहै मम रन उत्साह ।
भङ्ग करहु जिन पण्डित नाह ॥ ३५ ॥
इमि कहि सोधि लगन दलसंग ।
चल्यो लरन हिय पूरि उमंग ॥
लग्यो हंस को पुर नियराय ।
घेर करयो अरि आगम भाय ॥ ३६ ॥
हंस लग्यो तब करन बिचार ।
बोल्यो कोक सुनहु सरदार ॥
दुर्ग करहु कारजहि मतिमान ।
[illegible] करहिं [illegible] महान ॥ ३७ ॥
सो [illegible] नहिं जानौ आन ।
राख्यो [illegible] न [illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ३८ ॥

कोक कहै जब लौं यह आय ।
नहिं घेरै मम दुर्गहि धाय॥
तब लौं बीरन देहु निदेस[1] ।
बढ़ि मारैं दल रहै न सेस ॥ ३९ ॥
बोलि सारसादिक सैनेस ।
वधहु परहिं दिय हंस निदेस ॥
ते तब बढ़ि मयूर दल भारी ।
कियो खिन्न बहु भट बलधारी ॥ ४० ॥
दुखित मयूर गिद्ध सों बोलो ।
मन्त्री को करतव्य अमोलो ॥
गिद्ध कहै हम प्रथम बखानो ।
तब तुम साहस बस नहिं मानो ॥ ४१ ॥
ताको फल यह है महराज ।
अब का पूछत करतब काज ॥
तब बहु बिनय मोर नै करी ।
गिद्ध बिहँसि बोल्यो तिहि घरी ॥ ४ ॥
करहु न भय अरि आलसवन्त ।
जै दैहैं तेहि मारि तुरन्त ॥
तासों सीघ्र साजि बर सैन ।
रोधहु दुर्ग लरहु जगजैन ॥ ४३ ॥
इमि ते दोऊ हंस मयूर ।
लरे समर बर रिस धर सूर ॥

---

१ आशा ।

ताछन काग दुष्टता छाय ।
हंस दुर्ग दिय आग लगाय ॥ ४४ ॥
तब सब डरि मराल सैनेस ।
कूद कूद किय बारि प्रवेश ॥
हंस सुभाव मंदगति आप ।
चलि न सक्यो जो पावै आप[१] ॥ ४५ ॥
सारस सैनापाल सुढंग ।
सोउ रह्यो राजा के संग ॥
हंस कहै तुम प्रविसहु जीवन[२] ।
सारस अपनो राखहु जीवन ॥ ४६ ॥
सैनप कहै जात जहँ नाथ ।
जन तन मन धन ताके साथ ॥
तुमहिं त्यागि जैहों किमि स्वामी ।
हों[३] सदाहि को हों अनुगामी ॥ ४७ ॥
इतने में मयूर सैनेस ।
आयो कुक्कुट बली बिसेस ॥
लग्यो हंस को करन प्रहार ।
सारस तेहि आड्यो बहु बार ॥ ४८ ॥
बहुरि बिकल लखि कै खगराई ।
सेनापति कीनी चतुराई ॥
निज पच्छन अन्तर करि हंस ।
डार्यो सागर खग अवतंस ॥ ४९ ॥

---

१ जल । २ पानी । ३ मैं ।

पुनि लरि ते सेनापति दोऊ।
महि पै परे न जीवत कोऊ ॥
स्वामी हित निज त्यागी देह।
धन्य धन्य सारस बुधि गेह ॥ ५० ॥

दोहा।

इमि बक कीनो दुष्टता, वृथा कलह अज्ञान।
गयो हंस को राज सब, पर पच्छी सनमान ॥२० ॥
जो परपच्छी पुरुष को, मनुज करत बिस्वास।
सो पावत दुख नास है, जानहु गिरिधरदास ॥ २१ ॥

नीचहि देहि न उच्च पद, ताकों समुझि चजोग।
नीच बढ़ावहिं जे जगत, दुख पावहिं ते लोग ॥ २२ ॥

चौपाई।

इक मूसक लै निज मुख मीच।
उड़ो काक कोउ अंबर[1] बीच ॥
ताके मुख सों मूसक गिरयो।
लखि मुनि हियो दयापन घिरयो ॥ १ ॥
श्रायुहि पालि कियो श्रतिपुष्ट।
इक दिन लख्यो बिड़ालहि दुष्ट ॥
भागि सभै मुनि के ढिग श्रायो।
तब तिन ताहि बिड़ाल बनायो ॥ २ ॥

---

१ आकाश।

इक दिन स्वान मूस सों डरयो ।
तब मुनि ताकहँ कूकुर करयो ॥
सो लखि सिंह डरयो भय पाय ।
तब कीनो तेहि बाघ बनाय ॥ ३ ॥
ताहि मूस मुनि लखि सब जगजन ।
इहि विधि निंदित करहिं सब बरनन ॥
यह मूसक मुनि सिंह बनायो ।
सो मुनि के यह आयु सिरायो ॥ ४ ॥
यहि विचार चिन्त्यो मन माहीं ।
जब लौं यह मुनि मरिहैं नाहीं ॥
तब लौं जाय न यह अपवाद ।
तासों चाखहु मुनि तन स्वाद ॥ ५ ॥
यह विचारि मुनि भक्षन धायो ।
तब तिन पुनि तेहि आखु बनायो ॥
यासों नीचहि वर पद दान ।
उचित नहीं चित गुनहु सुजान ॥ ६ ॥

दोहा ।

बहुत लोभ करिये नहीं, कीने होत विनास ।
लालच सों दुख मूल है, बरनत गिरिधरदास ॥ २३ ॥

कुण्डलिया ।

दुरमति लोभी ऊँट इक, तप विधि सों बर लीन ।
ग्रीवा जोजन चार की, हरख्यो बुद्धि बिहीन ॥

हरख्यो बुद्धिविहीन बैठि बन के फल चाखै ।
सैन करहिं जब तबहि ग्रीष कन्दर महँ नाखै ॥
इक दिन तामधि स्यार लग्यां गर काटन द्रुतगति ।
जबलौं काढ़ै कंठ मरघो तबलों वह दुरमति ॥१॥

दोहा ।

यासों लोभ करिये नहीं, जामें बिपति अपार ।
लोभी को विश्वास नहीं, करै कोऊ संसार ॥ २४ ॥

बन्धु बन्धु जहँ परस्पर, मूरख करहिं बिरोध ।
तहाँ छली परि मध्य में, हरहिं धनहिं मघसोध ॥ २५ ॥

कुण्डलिया ॥

मग पूआ की पोट इक परी रही बन माहिँ ।
द्वै सिंहन नै सो लही झगरे अबुध तहाहिँ ॥
झगरे अबुध तहाहिँ जौन जीते सो पावै ।
दोऊ घायल लरि परे ताब नहिं कौन उठावै ॥
तिनकी लखि यह दसा आय तिन मध्य स्वान ठग ।
लै भागो सो पोट परे रहि गए दोऊ मग ॥ १ ॥

दोहा ।

सात दीप अरु सिन्धु सब, मन्दर मेरु पहार ।
सेसहिं इतौ न भार है जितो कृतघ्नी भार ॥ २६ ॥
नहीं कृतघ्नी को कबहुं, मनुज करै बिस्वास ।
दुख पावत बिस्वास कै, व्याल पालि जिमि पास ॥ २७ ॥

चौपाई।

रह्यो कृतघ्नो इक दुज दुष्ट।
हिंसक पाप करम रत पुष्ट॥
सो इक दिन मारत बहु जीव।
निकार गयो बन में अघसीव॥ १॥
तहँ इक राजहंस गुन गैन।
दुजहि देखि यह बोल्यो बैन॥
आपु विप्र मम धाम पधारे॥
आज अहैं धन भाग हमारे॥ २॥
तातें रहहु कछुक दिन पास।
तब ता नै नित कियो निवास॥
हंस दुजहि भोजन करवायो।
सब बिधि मोद दियो मन भायो॥ ३॥
बहु दिन रहि दुज चाह्यो जान।
हंस देखि तब कह्यो सुजान॥
जो इच्छा होवै सो लेहु।
तब तुम जाहु आपुने गेहु॥ ४॥
दुज बोल्यो मो कहं धन दीजे।
हंस कहै मन इच्छित लीजे॥
मेरा मित्र निसाचर अहै।
इत सो वह जोजन पर रहै॥ ५॥
ता ढिग जाय महा धन लेहु।
सुनि द्विज तहाँ गयो सहनेहु॥

जाय लई मनि मधुने भार ।
आयो बहुरि हंस आगार ॥ ६ ॥
कह्यो आजु निसि रहि तुव भौन ।
भोर मित्र मैं करिहौं गौन ॥
तब तेहि सादर राख्यौ हंस ।
सोयो रैन अघीमघतंस ॥ ७ ॥
मन में बिप्र बिचारयो ऐसे ।
असन बिना मग कटिहौं कैसे ॥
है यह खग सुमांस अरु पुष्ट ।
इमि बिचार तेहि मारयो दुष्ट ॥ ८ ॥
चल्यो प्रात लै धन की मोट ।
मृतक हंस सह ब्राह्मण खोट ॥
तहाँ मराल लख्यो निशिचारी ।
आय मित्र की दशा निहारी ॥ ९ ॥
जानि मित्र पापी को करम ।
मग तेहि जाय हत्यो गुन धरम ॥
कियो विलाप मित्र हित भारी ।
तबहि तहाँ आये पविधारी[1] ॥ १० ॥

दोहा ।

मरा मराल धरा[2] परा ब्राह्मण दुष्ट समेत ।
रोवत देख्यो राक्षसहि मित्र धरम धुर हेत ॥ २८ ॥

---

१ राजा इन्द्र । २ पृथ्वी ।

चौपाई ।

अमृत डारिकै हंस जिवायो ।
उठि निसिचर को कंठ लगायो ॥
मृतक विप्र लखि बोल्यो ऐसे ।
द्विज मम सखा मरयो यह कैसे ॥ ११ ॥
बहु प्रकार वासव[1] सों कही ।
तब तिन द्विजहि जिवायो सही ॥
उठ्यो विप्र लखि हंस सुजान ।
अङ्ग लाय किय रुदन महान ॥ १२ ॥
कीनो विदा पूजि बहु सोय ।
आयो गृह द्विज लज्जित होय ॥
तब सक्रादि सबै सुर वृन्द ।
कही हंस की जै सानन्द ॥ १३ ॥

दोहा ।

हंस इती नेकी करी, तऊ विप्र अघ कीन ।
याहा सो न कृतघ्नि को ,विस्वासहिं मतिपीन ॥ २९ ॥
द्विज दुरजन अनहित करयौ , मस्तक छेदन जोग ।
खग सज्जन हितही करयौ , धन धन सज्जन लोग ॥ ३० ॥
मूरख सिच्छा ना करिय , कबहुं सुबुध्र मन सोध ।
हित बातहिं मानै नहीं , उलटी करहि बिरोध ॥ ३१ ॥

---

१ राजा ।

चौपाई।

रही महा बट तरु बन माहीं।
निवसहिं खग रचि नीड़[1] तहाहीं॥
एक समय बरषा के काल।
भई बिपिन में वृष्टि बिसाल॥ १॥
ता तरु पै कपोत[2] बहु तोते।
रहे मुदित खाते अरु सोते॥
बानर वृन्द अबुध बिन धाम।
इत उत फिरत न सुखमय ठाम॥ २॥
खड़े भए तहं तरु ढिग आय।
कम्पित गात दुखी समुदाय॥
सो लखि दया पच्छियन लागी।
बोले बचन कपिन अनुरागी॥ ३॥
बानर तुम मृग मण्डन सुच्छ।
नर सम बिग्रह अधिकी पुच्छ॥
किमि ऐसे बन फिरत बिहाल॥
नहिं घर बिरचत सुख सब काल॥ ४॥
देखहु हम खग सब बिधि हीन।
चोंचन तृन बटोरि घर कीन॥
तासों कोउ बिधि धाम बनाय।
सुख सों निवसहु दुख सब जाय॥ ५॥

---

१ घोंसला, खोता। २ कबूतर।

सुनि मूरख कपि हित नहिं माने ।
हँसी करत समझे रिसियाने ॥
बरखा काल बिगत सठ आए ।
तोरि खगन के नीड़ गिराए ॥ ६ ॥

दोहा ।

तासों मूर्ख न सिखिये , उलटो करत बिगार ।
नास्तिक हित उपदेश सों , खण्डन हेत तयार ॥ ६१ ॥

विदुरनीति *

दोहा ।

कर्म लिखी सो होय है , यह सम्मति निर्धार ।
पै अपने भरसक करिय , कुल रच्छन व्यवहार[1] ॥ १ ॥
तासों चित दे सुनहु नृप , राज नीति सह प्रीति ।
पुनि मन इच्छत कीजियो , जिमि न होय अरिभीति[2] ॥ २ ॥
जो नृप बूझि बलाबलहि , करत समर[3] अरु साम[4] ।
सो पावत सुख जगत में , नातरु दुख परिनाम ॥
कोउ काज आरम्भिए , करिये प्रथम विचार ।
सब प्रकार दृढ़ समुझि तब , तेहि करिये निर्धार ॥ ४ ॥
राजा सोहत राज सों , सोहत नृप सों राज ।
बन बनपति[5] सों सोहतो , बन सों बनपति भ्राज ॥ ५ ॥

---

* बाबू गोपालचन्द्र लिखित ।
१ निर्धारण, निश्चय, निर्णय । २ शत्रु का भय । ३ संग्राम । ४ संधि, मेल मिलाप । ५ वनस्पति ।

कुतसित नृप को सङ्ग लहि , पावत प्रजा बिनास ।
गोहूं सङ्ग घुन पिसत जिमि , बरनत गिरधरदास ॥ ६ ॥
नरपति नसत कुमन्त्र[1] सों , साधु कुसंगहि पाय ।
विनसत सुत अति प्यार सों , द्विज बिन पढ़े नसाय ॥ ७ ॥
वारनारि[2] लज्जा सहित , लाज रहित कुलनारि ।
दुज असुष्ट सन्तुष्ट नृप , ये सब नष्ट विचारि ॥ ८ ॥
मन्त्रवान बिख एक कों , नासत किये प्रयोग ।
नसत देस सब आसुही[3] , नृप कुमन्त्र के जोग ॥ ९ ॥
सोखत पोखत जलहि जिमि , समय पाय कै सूर[4] ।
तिमि प्रजान बरतै नृपति , दोउ दिसि सुख भरपूर ॥ १० ॥
करै न बंधु बिरोध कों , बिपति जान परिनाम ।
बंधु बैर रावन मरयो , सो नृप होय न छाम ॥ ११ ॥
आमद सों कमती खरच, राखै समुझि नृपाल ।
सो अति सुख पावै सुमति , बाढ़ै कोस बिसाल ॥ १२ ॥
जो अरि[5] प्रबल निहारियै , मिलि जैये हित होय ।
समै पाय तिहि नासियै , बलि बासव[6] गति जोय[7] ॥ १३ ॥
मारि अरि कों लरवाय कै , लखिय तमासो आप ।
तिनके बिनसे जाय दुख , जिमि बिन प्राच्छित पाप ॥ १४ ॥
पावक वैरी रोग रिन , सेसहु राखिय नाहिं ।
ये थोड़ेहु बढ़हिं पुनि , महा जतन सों जाहिं ॥ १५ ॥

---

१ खोटी सम्मति । २ वेश्या, गणिका । ३ शीघ्रही । ४ सूर्य्य । ५ शत्रु । ६ राजा इन्द्र । ७ देख कर ।

कुल राखिय तजि एक कों, कुल तजि राखिय ग्राम।
देस हेत ग्रामहि तजिय, आतम हित सब ठाम ॥ १६ ॥
अब बरनत नृप आदि के, लच्छन कुरुकुलदीप।
भलो बुरो जाने जतन, जाहि जतन अवनीप[1] ॥ १७ ॥

राजा लक्षण।

सावधान निज राज में, हित अनहित पहिचान।
पर छिद्रहि जो लखत सो, नृपसत्तम[2] बुधिमान ॥
अलस[3] प्रमादी[4] राग गति, नीत न देखत जौन।
उर सद[5] असद[6] बिवेक नहिं, अधम अवनिपति तौन ॥ १९ ॥

मन्त्री लक्षण।

स्वामीहित इच्छा सहित, सावधान सब कार।
राखै प्रजा समोद सो, मंत्रिन को सरदार ॥ २० ॥
जो लालच मैं भीरु सठ, स्वामी हितहि न चाह।
सो मन्त्रिन में अधम तेहि, नहिं राखै नरनाह ॥ २१ ॥

सेनापति लक्षण।

शस्त्र शास्त्र जानै सवै, व्यूहादिक[7] में दच्छ[8]।
स्वामी हित इच्छत सोई, सेनापाल है स्वच्छ ॥ २२ ॥
हृदय भीरु जानै नहीं, आयुध[9] को व्यवहार।
सो सेनापति अधम तेहि, नहिं राखै सरदार ॥ २३ ॥

---

१ राजा। २ अति उत्तम, श्रेष्ठतम। ३ आलसी। ४ असावधान। ५ भला। ६ बुरा। ७ सेना का क्रम से सजाना इत्यादि। ८ दक्ष, चतुर। ९ शस्त्र।

सूर लक्षण ।

धीर बली दुसमन समन ; मुरै न शत्रु हजूर ।
तृनसम असु[1] जसु[2] रतनसम; जो समझै सो सूर ॥ २४ ॥

कादर लक्षण ।

समरशस्त्र सन्मुख निरखि , तकै भीत[3] भरि नैन ।
सो कादर संसार में , आदर जोग अहै न ॥ २५ ।

कामदार लक्षण ।

जतन करत नित उदय को , स्वामी सुखद अनन्त ।
जल धन धरन बढ़ावतो , कामदार बुद्धिवन्त ॥ २६ ॥
निज हित चाहत पाप मति , आलस स्वामी काम ।
नासै वित्त[4] बिचार बिन , कामदार अघधाम ॥ २७ ॥

दानाध्यक्ष लक्षण ।

धर्मवन्त लालच रहित ; पण्डित मूर्ख विवेक ।
दानाध्यक्ष प्रधान सो , चहै भूप को नेक ॥ २८ ॥
अविवेकी कलही कुटिल , मूरख लालचवन्त ।
ऐसो दानाध्यक्ष नहीं , करहिं चतुर छितिकन्त[5] ॥ २९ ॥

उपरोहित लक्षण ।

वेदविज्ञ पण्डित सुघर , धर्मशास्त्र संपन्न ।
नृपहित चतुर विवेक मय , सो उपरोहित[6] धन्न ॥ ३० ॥
मूरख धर्म विवेक नहिं , निज पूजा सों काम ।
सो उपरोहित अधम है , वञ्चक[7] ताको नाम ॥ ३१ ।

---

१ प्राण । २ यश, कीर्ति । ३ भय, डर । ४ धन । ५ राजा ।
६ पुरोहित । ७ ठग ।

कुल राखिय तजि एक कों, कुल तजि राखिय ग्राम।
देस हेत ग्रामहि तजिय, आतम हित सब ठाम॥ १६॥
अब बरनत नृप आदि के, लच्छन कुरुकुलदीप।
भलो बुरो जाने जतन, जाहि जतन अवनीप[1]॥ १७॥

राजा लक्षण।

सावधान निज राज में, हित अनहित पहिचान।
पर छिद्रहि जो लखत सो, नृपसत्तम[2] बुधिमान॥
अलस[3] प्रमादी[4] राग गति, नीत न देखत जौन।
उर सद[5] असद[6] बिवेक नहिं, अधम अवनिपति तौन॥ १

मन्त्री लक्षण।

स्वामीहित इच्छा सहित, सावधान सब कार।
राखै प्रजा समोद सो, मंत्रिन को सरदार॥ २०॥
जो लालच मै भीरु सठ, स्वामी हितहि न चाह।
सो मन्त्रिन में अधम तेहि, नहिं राखै नरनाह॥ २१॥

सेनापति लक्षण।

शस्त्र शास्त्र जानै सबै, व्यूहादिक[7] में दच्छ[8]।
स्वामी हित इच्छत सोई, सेनापाल है स्वच्छ॥ २२॥
हृदय भीरु जानै नहीं, आयुध[9] को व्यवहार।
सो सेनापति अधम तेहि, नहिं राखै सरदार॥ २३॥

---

१ राजा। २ अति उत्तम, श्रेष्ठतम। ३ आलसी। ४ असावधान। ५ भल
६ बुरा। ७ सेना का क्रम से सजाना इत्यादि। ८ दक्ष, चतुर। ९ शस्

सूर लक्षण ।

धीर बली दुसमन समन ; मुरै न शत्रु हजूर ।
तृनसम प्रानु[1] जस[2] रतनसम; जो समझै सो सूर ॥ २४ ॥

कादर लक्षण ।

समरशास्त्र सन्मुख निरखि , तकै भीत[3] भरि नैन ।
सो कादर संसार में , आदर जोग अहै न ॥ २५ ।

कामदार लक्षण ।

जतन करत नित उदय को , स्वामी सुखद अनन्त ।
जल धन धरन बढ़ावतो , कामदार बुद्धिवन्त ॥ २६ ॥
निज हित चाहत पाप मति , आलस स्वामी काम ।
नासै वित्त[4] बिचार बिन , कामदार अघधाम ॥ २७ ॥

दानाध्यक्ष लक्षण ।

धर्मवन्त लालच रहित ; पण्डित मूर्ख बिवेक ।
दानाध्यक्ष प्रधान सो , चहै भूप को नेक ॥ २८ ॥
अविवेकी कलही कुटिल , मूरख लालचवन्त ।
ऐसो दानाध्यक्ष नहीं , करहिं चतुर छितिकन्त[5] ॥ २९ ॥

उपरोहित लक्षण ।

वेदविज्ञ पण्डित सुघर , धर्मशास्त्र संपन्न ।
नृपहित चतुर विवेक मय , सो उपरोहित[6] धन्न ॥ ३० ॥
मूरख धर्म बिवेक नहिं , निज पूजा सों काम ।
सो उपरोहित अधम है , बन्चक[7] ताको नाम ॥ ३१ ।

---

१ माया । २ यश, कीर्ति । ३ भय, डर । ४ धन । ५ राजा । पुरोहित । ७ ठग ।

दूत लक्षण ।

वाकचतुर बुधिमान बर, कहै यथारथ जौन ।
गिरधरदास बखानिये, दूत शिरोमणि तौन ॥ ३२ ॥
भय सों स्वामिसँदेश जो, कहि न सकै पर पास ।
अपटु[1] लालची दूत सो, तजिये गिरधरदास ॥ ३३ ॥

सेवक लक्षण ।

चेष्टा[2] में मन को गुनै, करै अचल ह्वै काज ।
ऐसो सेवक चाहिए, सुखी होय नरराज ॥ ३४ ॥
प्रभु इच्छा बूझै नहीं, करै और की और ।
सो सेवक में अधम है, धूर्तन को सिरमौर ॥ ३५ ॥

सारथी लक्षण ।

परसर[3] वारै[4] चालि रथ, शत्रु दाहिने होय ।
आपुहि रथिहि बचावई, श्रेष्ठ सारथी सोय ॥ ३६ ॥
जो रनभीरु अबूझ गति, करि न सकत बस मीच ।
वारि सकत परघात[5] नहि, तौन सारथी नीच ॥ ३७ ॥

वैद्य लक्षण ।

वृद्ध होय सुन्दर सदय, आयुर वेद निधान ।
देस काल प्राकृत गुनै, सो है वैद प्रधान ॥ ३८ ॥
नहिं निदान[6] जानै कछू, नहिं जानै उपचार[7] ।
वृथा तर्क करि असु हरै, अधम वैद्य निरधार ॥ ३९ ॥

गवैया लक्षण ।

जानै राग विभेद सब, सुर तालादिक ध्यान ।
सच्चमन मोहित विधि धरै, गायक सोइ सुजान ॥ ४० ॥

---

१ मूर्ख । २ प्रयत्न, उद्योग, काम । ३ शत्रुओं के बाण । ४ निर्बल, [illegible]
५ शत्रुओं का [illegible] । ६ रोग का मूल कारण । ७ चिकित्सा, इलाज

राग रूप जानै नहीं, नहिं सुरताल मिलाप।
सो गायक महँ अधम है, निज इच्छा आलाप ॥ ४१ ॥

कवि लक्षण।

अलंकार रस नायका, छन्द लक्षणा व्यंग।
जो जानै प्रस्तार सब, सो कवि गुनी सुढंग ॥ ४२ ॥
छन्द रीति ना जानई, नहि साहित को ज्ञान।
निज इच्छित कविता रचै, सो कवि अधम प्रमान ॥ ४३ ॥

ज्योतिषी लक्षण।

ज्योतिष विद्या में निपुन, प्रश्न बखाने सत्त।
गणित किये हस्तामलक, सो जोतिषी महत्त ॥ ४४ ॥
नहीं गणित सिद्धान्त नहिं, जानै प्रश्न विधान।
है नक्षत्रसूची सोई, अधम जोतिषी जान ॥ ४५ ॥

पण्डित लक्षण।

सास्त्र बिसारद चलन जग, सास्त्र उक्त व्यवहार।
जानत आगम निगम सब, सो पण्डित निरधार ॥ ४६ ॥

मूर्ख लक्षण।

हित अनहित बूझै नहीं, पढ़यो न सास्त्र कुचाल।
करत काज आतुर अपटु, सो है मूर्ख बिसाल ॥ ४७ ॥

लेखक लक्षण।

प्रकृत[1] कहै सारथ गुनै, दिव्य पंक्ति पर लेख।
सो उत्तम लेखक अहै, सास्त्र निपुन सुचि भेख ॥ ४८ ॥
अर्थ न जानै शब्द को, लिखै प्रमादी होय।
अक्षर सुन्दरता नहीं, लेखक निन्दित सोय ॥ ४९ ॥

१ यथार्थ, ठीक, स्पष्ट, ज्यों का त्यों।

गुरु लक्षण ।

सकल सास्त्र सारहि गुनै, लाेभ रहित व्यौहार ।
शिष्य हितहि चाहै सदय, सद्गुरु सो निरधार ॥ ५० ॥
शिष्य धनहि चाहै हरन, नहिं विवेक नहिं ज्ञान ।
बूड़ै चेला सङ्ग लै, सो गुरु अधम प्रमान ॥ ५१ ॥

शिष्य लक्षण ।

गुरु बानी बिश्वास दृढ़, विसन रहित मतिमान ।
गुरु सेवा निस दिन करै, शिष्य सोइ सज्ञान ॥ ५२ ॥
नहिं गुरु बचनहिं आदरै, श्रद्धा गुरु में नाहिं ।
नहिं जानै करतव्य सो, शिष्य अधम जग माहिं ॥५३ ॥

आस्तिक लक्षण ।

वेद शास्त्र विश्वास अरु, गुरु को बचन प्रमान ।
चले रहिन लै साधु की, सो आस्तीक प्रधान ॥ ५४ ॥

नास्तिक लक्षण ।

श्रुति शास्त्रन खण्डन करै, करि कुतर्क बहु मूढ़ ।
निज इच्छत पथ चलत सो, नास्तिक अघ आरूढ़ ॥

बन्धु लक्षण ।

नरपति हित चाहै सदा, देत सबै थल संग ॥
नहिं लालच नहिं छल सोई, उत्तम बन्धु सुढंग ॥ ५६ ॥
मिलयो रहत निज प्रीत हित, दगा समय पै देत ।
बन्धु अधम तेहि कहत हैं, जाको सुख पै हेत ॥ ५७ ॥

स्त्री लक्षण ।

रूपवती लज्जावती, शीलवती मृदु बैन ।
तिय कुलीन उत्तम सोई, गरिमाधर [1] गुण ऐन ॥ ५८ ॥

---

१ बड़ाई रखनेवाली ।

अति चञ्चल नित कलह रुचि, पति सों नाहिं मिलाप।
सो अधमा तिय जानिये, पाइय पूरन पाप॥ ५९॥

पुत्र लक्षण।

पितु आज्ञा तत्पर सदा, चलत आप कुल चाल।
पण्डित विज्ञ[1] विनीत[2] सो, उत्तम सुत नरपाल॥ ६०॥
जनक बचन निदरत निडर, बसत कुसंगत माहिं।
मूरख सो सुत अधम है, तेहि जनमे सुख नाहिं॥ ६१॥

मित्र लक्षण।

सुख दुख अति विग्रह विपति, यामें तजै न संग।
गिरिधरदास बखानिये, मित्र सोई बरढंग[3]॥ ६२॥
सुख में संग मिल सुख करै, दुख में पाछो होय।
निज स्वारथ की मित्रता मित्र अधम है सोय॥ ६३॥

सुहृद लक्षण।

आपु करै उपकार अति, प्रति उपकार न चाह।
हियरो कोमल सन्त सम, सुहृद सोइ नरनाह॥ ६४॥

सज्जन लक्षण।

मन सों जग को भल चहै, हिय छल रहै न नेक।
सो सज्जन संसार में, जाको विमल विवेक॥ ६५॥

दुर्जन लक्षण।

बिन कारन संसार सों, बैर करै अघ पुष्ट।
सुख मानै परहानि में सो है दुरजन दुष्ट॥ ६६॥

---

१ प्रवीन। २ नम्र, सुशील। ३ अच्छे ढँगवाला।

ब्राह्मण लक्षण।

सम[1] दम[2] त्याग[3] विराग तप[4], सीलवन्त श्रुतिवन्त[5]।
ज्ञान जुक्ति सों जुक्त जो, सो द्विज द्विज कुलकन्त ॥ ६७ ॥
दम्भजुक्त पाखण्डमय, संध्या कर्म विहीन।
विप्र अधम सो जानिये मारन आदि प्रवीन ॥ ६८ ॥

क्षत्री लक्षण

दानधीर रनधीर पुनि आस्तिक वर धरमिष्ट[6]।
तेज सूरता जस सहित, सो क्षत्रिन में सिष्ट[7] ॥ ६९ ॥
रनकायर मिथ्याबचन, मिथ्या हिंसक जौन।
नीति अपटु छत्रीन में, अधम जानिये तौन ॥ ७० ॥

वैश्य लक्षण।

धनी चतुर व्यवहार में, शास्त्र निपुन मतिवन्त।
सत आदर कर्त्ता सुरुचि, वैश्य सोइ बुधकन्त ॥ ७१ ॥
नहिं जानत व्यवहार जो, नहीं शास्त्र में नेहु।
छल कर पर धन हरन रत वैश्य अधम गुन लेहु ॥ ७२ ॥

शूद्र लक्षण।

सेवा तीनहुँ बरन की, करै अछल चित होय।
जथा लाभ प्रिय लोभहत, सूद्र श्रेष्ठ है सोय ॥ ७३ ॥
अपनो धरमहिं त्यागि सठ वृथा बिड़म्बन श्रोर।
नहीं देव द्विज भक्ति सो, शूद्र अधम सिरमौर ॥ ७४ ॥

---

१ मन का शमन। २ इन्द्रियों का दमन। ३ धन को अच्छे काम में करना। ४ मानसिक और शारीरिक परिश्रम। ५ वेदपाठी। ६ धर्म्म श्रद्धा रखनेवाला। ७ श्रेष्ठ।

ब्रह्मचारी लक्षण।

गुरु आज्ञा ततपर सदा, विद्या पर अभ्यास।
श्रेष्ठ ब्रह्मचारी सोई, बरनत गिरिधरदास ॥ ७५ ॥

नहिं गुरु की आज्ञा करै, नहिं विद्या अभ्यास।
ब्रह्मचारि सो अधम है, चहै सुभोजन बास ॥ ७६ ॥

गृहस्थ लक्षण।

देव पितर ऋषि अतिथि द्विज, पूजै सहित विवेक।
उत्तम सोइ गृहस्थ है, गृहलम्पट नहिं नेक ॥ ७७ ॥

नहिं पूजत सुर पितर ऋषि, द्विज अतिथिहि नहिं देय।
सदा रक्त[१] तिय सुतन में, अधम गृही है सोय ॥ ७८ ॥

वानप्रस्थ लक्षण

बन निवास आचरन सह, फलमूलादि अहार।
नहीं करै फल वासना, वानप्रस्थ सो चारु ॥ ७९ ॥

रहत विपिन गृह चित रम्यो, नहिं बस जीभ उपस्थ।
वानप्रस्थ सो नष्ट है, जासु नहीं मन स्वस्थ ॥ ८० ॥

संन्यासी लक्षण।

ब्रह्मरूप ब्रह्महिं जपत, ममता मोह विहीन।
सो संन्यासी श्रेष्ठ है, उदासीन मतिपीन ॥ ८१ ॥

इच्छा डोलत बहु फलहिं, नहिं उर आनत ज्ञान।
सो संन्यासी नष्ट है, ता हित नरक महान ॥ ८२ ॥

इमि सुनि छत्ता[२] के वचन, बोल्यो प्रज्ञानैन[३]।
और नीति बरनहु बिदुर, चारि बरन सुख दैन ॥ ८३ ॥

---

१ अनुरक्त, आसक्त। २ विदुर। ३ धृतराष्ट्र।

सधन होय कै अधन पै, सुबुध तजै नहिं धीर।
चिन्ता कोउ विधि ना करै, उर राखै बलबीर ॥ ९५ ॥
चिता अधिक चिन्ता अहै, दहै देह सब काल।
यासों चिन्ता ना करिय, धरिय धीर हर हाल ॥ ९६ ॥
चिन्ता जर है नरन कों, पट जर रवि नभ सोय।
जर गृहस्थ को बाँझपन, तिय जर कन्त अछोह ॥ ९७ ॥
करत क्रोध जो बूझ बिन, पाछे पावत ताप।
तासों क्रोध न कीजिए, नीति विचच्छन[1] आप ॥ ९८ ॥
उचित लोभ अप्रमान नहिं, कीने होत बिनास।
लालच सब दुख मूल है, बरनत गिरिधर दास ॥ ९९ ॥
लोभ सरिस अवगुन नहीं, तप नहिं सत्य समान।
तीरथ नहिं मन शुद्धि सम, विद्या सम धन जान ॥ १०० ॥
लघुपन छलपन कुटिलपन, कहुं कहुं नीको जान।
दंत कमर कच[2] में जथा, जाहिर चारु जहान ॥ १०१ ॥
जामें गुन अवलोकिये, करिय ताहि स्वीकार।
बाल बचन हूँ करिय जो, होय नीति अनुसार ॥ १०२ ॥
सब जीवन के गुनन को, देखि करिय स्वीकार।
अवगुन त्यागिय करहिं बुध, तरु तजि फल आहार ॥ १०३ ॥
वर सम्बन्ध कुलीन सों, रूपवंत कहँ त्यागि।
तजि नृप द्विज पुत्रहिं वरै, द्विज कन्या अनुरागि ॥ १०४ ॥
करिय बरोबर मनुज सों, बैर व्याह व्यवहार।
घट बढ़ में रस ना रहै, समुझहु नर भरतार ॥ १०५ ॥

---

१ विचक्षण, निपुण, चतुर। २ केश।

सद कविता सद पुत्र अरु, कूपादिक निरमान ।
इन सों नर को रहत है, जाहिर नाम जहान ॥ ११७ ॥
धन दै लोभी करिय बस, छल करि सठ हठ पेन ।
कूर बिनय सों करिय बस, सूरहिं कहि सत[1] बैन ॥ ११८ ॥
कुल गुनिये आचार लखि, गुनिय बचन सों देस ।
भोजन लखि कै बल गुनिय, पटुता लखि के बेस ॥ ११९ ॥
भय लज्जा गुन चतुरता, धर्म शील नहिं जत्र ।
पण्डित पुरुष बिचारि कै, बास करै नहिं तत्र ॥ १२० ॥
नृप सज्जन पण्डित धनी, नदी बैद्य निज जात ।
ए जा पुर में होहिं नहिं, तहाँ न बसिए रात ॥ १२१ ॥
राजा संग बहु बोलबो, पन्नग को खिलवार ।
सरि[2] तरिबो नित प्रति वृथा, दिन दिन बिपति अपार ॥ १२२ ॥
सत्य सुमति धीरज धरम, बंधु मित्र सुत नारि ।
आपत में परखय इनहिं, गिरधरदास विचार ॥ १२३ ॥
तिय सुत सेवक शिष्य गुन, यद्यपि प्रसंसा योग ।
तदपि प्रसंसहिं ताहि नहिं, ता सन्मुख बुध लोग ॥ १२४ ॥
गिरधरदास विचार उर, तीनहि बोरिय नीर ।
धनी सूम निर्धन अतप[3], विद्यावंत अधीर ॥ १२५ ॥
तरवर फूल्यो बिपिन में, मित्र उदय परदेस ।
ए दोउ काम न आवहीं, समुझहु सत्य नरेस ॥ १२६ ॥
सुहृद बंधु परदेस में, धन ताला के माहिं ।
विद्या पुस्तक मध्य ए, समय सम्हारै नाहिं ॥ १२७ ॥

---

१ उत्तम । २ नदी । ३ अतपस्वी, अपरिश्रमी, अनुद्योगी ।

पिय मोह जहँ कपट बिन, शत्रु मोय बिन होय ।
देश मोह जहँ औषिधता , मन मलिन नर बिन मोह ॥ १२८ ॥
है पावक तन दहन गुन , नहिं सुनुभ करि सोय ।
निर्धन कैा बहु कामना , निर्बल कैा बहु क्रोध ॥ १२९ ॥
यन अमृत सों नास है, राज कुमति सों नास ।
नास करै सों दान फल, पूजन बिन बिश्वास ॥ १३० ॥
जासु राज सो नृप जियत , गुणी जियत नियवन्त ।
जेहि विद्या सो नर जियत , सदा जियत जसवन्त ॥ १३१ ॥
नृपति मृतक बिन राज को , विप्र मृतक बिन कर्म ।
धन बिन मृतक गृहस्थ है , जती मृतक बिन धर्म ॥ १३२ ॥
खेती जल बिन नष्ट है, जियत कष्ट तन कष्ट ।
प्रजा नष्ट राजा बिना , नृप मंत्री बिन नष्ट ॥ १३३ ॥
सेन नष्ट बिन बीर के , बीर नष्ट बिन धीर ।
धीर नष्ट उत्तालपन , ताल नष्ट बिन नीर ॥ १३४ ॥
नगर नष्ट सरिता बिना , धाम नष्ट बिन कूप ।
पुरुष नष्ट बिन शील के , नष्ट नारि बिन रूप ॥ १३५ ॥
नष्ट रूप वर वसन बिन , नष्ट असन बिन लोन ।
नष्ट सुमति बिन राजगृह , नष्ट वास बिन भैान ॥ १३६ ॥
राज मंत्र अरु मंत्र जपु , नींद एकाकी होय ।
मिष्ट खान में गान में , एथहि उचित नर दोय ॥ १३७ ॥
प्रजा मूल राजा अहे , जनम मूल है कर्म ।
प्रकृति मूल संसार है , छमा मूल है धर्म ॥ १३८ ॥

छमापतिहि भूषन क्षमा, नर भूषन सतसंग।
कुल भूषन मिल के रहन, मद भूषन मातंग ॥ १३९ ॥

सूर काम सूरहिं करै, करै न कूर घमण्डि।
स्यार हजारहु सिंह बिन, गज सिर सकै न खण्डि ॥ १४० ॥

नाहर भूखो रोग बस, वृद्ध जदपि तन छीन।
तदपि दुरद[1] मरदन चहत, सूर होहि नहिं दीन ॥ १४१ ॥

कवित्त।

मनुज की सोभा पण्डिताई ते रहति है न,
सोभा पण्डिताई की सभा बिना न पाई है।
गिरधरदास भूप बिना सोभा है न भूमि की,
भूप की न सोभा बिन बुद्धि के सदाई है।
बुद्धि की न सोभा दया रहित जगत बीच,
दया की न सोभा जहाँ तुमुल[2] लराई है।
सोभा न लराई की है सूर भरपूर बिन,
सोभा नहिं सूर की गरूर बिन गाई है ॥ १४२ ॥

दोहा।

लाख मूर्ख तजि राखिये, इक पण्डित बुधि धाम।
सोभा इक है हंस सो, लाख काक केहि काम ॥ १४३ ॥

राजा पण्डित तुल्य नहिं, जानहु नर-सिरताज।
पण्डित पूज्य जहान में, नृपति पूज्य निज राज ॥ १४४ ॥

तब लौं मूरख बोलहीं, जब लौं पण्डित नाहिं।
जब लौं रवि नभ नहिं उदय, तब लौं नखत[3] दिखाहिं ॥ १४५ ॥

---

१ हाथी। २ गहरी, बड़ी भारी। ३ नक्षत्र, तारे।

[illegible]

... बिन विद्या के पुरुष, ... बिन ... ॥

तृष्णा ... बिनु, ... बिन ... ॥

विद्या बिना विवेक के, बहु ध्यान बिनु ... ।

... बिना वैराग्य के, मनुज बुद्धि बिन ... ॥

[illegible]

बुद्धि सरिस कोउ बल नहीं, सुमति सरिस नहिं मित्र।
विद्या नहिं अध्यात्म सम, ज्ञान सरिस नहिं नित्र[1] ॥ १५७ ॥

विद्यावन्तहिं चाहिए, पहिले धर्म विचार।
तासों दोऊ लोक को, सधत सुद्ध व्यवहार ॥ १५८ ॥

विद्यावन्त सुसील जो, धर्मवन्त मतिधीर।
सोइ पण्डित संसार में, सुजन रत्न बलवीर ॥ १५९ ॥

सज्जन को सन्तोष धन, नृप धन सैन महान।
तिय को धन पिय जगत में, धन धन वैस्य प्रमान ॥ १६० ॥

भावत अतिहित आदरत, बोलत बचन विनीत।
जिय पर उपकारहि चहत, सज्जन की यह रीति ॥ १६१ ॥

सज्जन माहिं दयालुता, चञ्चलता तिय माहिं।
सठहिं क्रूरता दुजहिं तप, सहज धरम[2] ए आहिं ॥ १६२ ॥

सज्जन तजै न साधुता, करै कोऊ विपरीत।
पग डारतहूँ गङ्ग जल, विमल करै यह रीत ॥ १६३ ॥

सज्जन संग अनहित करै, ते हित करैं निदान।
जैसे भृगु मारयो चरन, उर धारयो भगवान ॥ १६४ ॥

तन अनित्य संगी धरम, प्रभु जग कर्त्ता सोय।
तीन बात जो जानई, तासों खोट न होय ॥ १६५ ॥

सब परतिय जिहि मातु सम सब पर धन जिहि धूर।
सब जीवन निज सम लखै, सो पण्डित भरपूर ॥ १६६ ॥

सुद्ध नीर है तक्र[3] में, सुद्ध पाट में नील।
सुद्ध धर्म है बाघ को, नर में सन्त सुशील ॥ १६७ ॥

---

१ नेत्र, नयन। २ स्वाभाविक धर्म। ३ छाछ, मठा।

धनी सुपच[1] परसे असुचि, पूजिय निरधन सन्त ।
खर न पूज्य मनि भूखितहु, पूज्य गऊ मलवन्त ॥ १६८ ॥

छोटे में अघ लगत है, बड़े अनघ अविरुद्ध ।
असुचि छुए घट जल असुचि, भरि प्रवाह में सुद्ध ॥ १६९ ॥

बड़े होय अघ जुक्तहू, लखिये अनघ सदैव ।
अपनी सुधरै धर्म बल, उनकी जानै दैव ॥ १७० ॥

जिनको निज सों उच्च पद, जिमि पितु गुरु सुर पर्व ।
सदा आदरहिं तिनहिं वुध, मुनि ता में सुख सर्व ॥ १७१ ॥

भयत्राता पत्नी पिता, विद्याप्रद गुरु जौन ।
मंत्रदानि अरु असनप्रद, पंच पिता छितिरौन ॥ १७२ ॥

तीन बरन को विप्र गुरु, द्विज गुरु अग्नि प्रमान ।
कामिनि को गुरु कन्त है, जगगुरु अतिथि सुजान ॥ १७३ ॥

तियहि कन्त पुत्रहि पिता, शिष्यहि गुरू उदार ।
स्वामि सेवकहि देवता, यह श्रुति मत निर्धार ॥ १७४ ॥

चलै रहिन लै धर्म को, सोई विद्यावन्त ।
जेहि हित अहित विवेक है, सो सुन्दर महिकन्त ॥ १७५ ॥

करिये विद्यावन्त को, सेवन अरु सहवास ।
तासों आवहि अमित गुन, अवगुन होहिं विनास ॥ १७६ ॥

सतसंगत में वास सों, अवगुनहूं छिप जात ।
अहिर धाम मदिरा पिवै, दूध जानिये तात ॥ १७७ ॥

असत संग में वास सों, गुन अवगुन ह्वै जाय ।
दूध पियै कलवार घर, मदिरा सवहिं वुझाय ॥ १७८ ॥

---

१ चाण्डाल, डोम, मेहतर ।

दुष्ट संग दुख सम गुनै , सुजन संग सुख इष्ट ।
पियै सिंधु जल जब तबहि , गुनै गङ्गजल मिष्ट[1] ॥ १७९ ॥

वृथा होत कोउ काल नहिं , विद्या सेवन तात ।
पर पाये जग दुख तजत , नतरु चतुर जग ख्यात ॥ १८० ॥

देश काल गुनि कै चलै , चतुर सोइ जग स्वच्छ ।
जुक्ति जुक्त रचना रचै , सो कवि मंडन[2] अच्छ ॥ १८१ ॥

काव्य शास्त्र अभ्यास में , काल सुबुध को जात ।
व्यसन लराई नींद में , मूरख दिवस बितात ॥ १८२ ॥

कुण्डलिया ।

विधि सों कवि सब विधि बड़े , यामें संशय नाहिं ।
षट रस विधि की सृष्टि में , नव रस कविता माहिं ॥
नव रस कविता माहिं , एक सों एक सुलच्छन ।
गिरिधरदास विचार लेहु , मन माहिं विचच्छन ॥
काल कर्म अनुसार रचत , विधि काम गहि सिधि सों ।
कवि इच्छा अनुसार सृष्टि , विरचत बर विधि सों ॥ १८३ ॥

दोहा ।

सुकवि भए पण्डित भए , कहन न जानी बात ।
तौ सब पढ़िबो व्यर्थ है , ज्यों फागुन बरसात ॥ १८४ ॥

बात समै की बरनिये , प्रगटत चित्त हुलास ।
जैसे रुचत मलार अति , पावस[3] गिरिधर दास ॥ १८५ ॥

बिना समय की बात सों , मोहति नेकहु नाहिं ।
फागुन मास मलार जिमि , नहिं भावै मन माहिं ॥ १८६ ॥

---

१ मीठा । २ भूषण । ३ वर्षा ऋतु

बात निकामहुँ लहि समय, सोहत लखहु विचार।
द्यूत दिवारी मध्य जिमि, जिमि होरी मधि गारि ॥ १८७ ॥

भली बातहू बिन समय, नहिं सोहत निरिधार।
जिमि विवाह में बरनियै, ज्ञान कथा परकार ॥ १८८ ॥

बनी बात बिगरै तुरत, बिगरी बनै न तात।
काँच कलस फोरिय पटकि, पुनि न जुरै कोउ भाँत ॥ १८९ ॥

पण्डित पासहु रहत पै, मूरख समुझत नाहिं।
जिमि प्रभाव जानै नहीं, मीन गङ्गजल माहिं ॥ १९० ॥

महि में ऊसर व्यर्थ जिमि, तरु में रेंड प्रमान।
पशु में व्यर्थ सियार जिमि, नर में मूर्ख अजान ॥ १९१ ॥

कबहु नमै नहिं मूर्खजन, नमत सुबुध अवतंस[1]।
आम डार फल सह नमत, नमत न निष्फल बंस ॥ १९२ ॥

बालू गृह सरितट त्रिटप[2], मूर्ख मित्रता जौन।
ये इक दिन नाहीं अहैं, साँच सुनहु छितिरौन ॥ १९३ ॥

मूरख जानै नेकु नहि, अच्छर बिनु अबिवेक।
जिमि षटरस के स्वाद कों, कीस[3] न जानै नेक ॥ १९४ ॥

बाद न कीजे मूर्ख सों, किये होत दुख भूरि[4]।
नहीं होय सिद्धांत कछु, जाय प्रतिष्ठा दूरि ॥ १९५ ॥

जो मूरख निन्दा करै, पण्डित की नहिं हानि।
रबि पै धूर उड़ाय है, परै अपुन सिर आनि ॥ १९६ ॥

भली बुरी समझै नहीं, मूरख मनुज महान।
ते नहिं बोलन जोग हैं, बोले सों कलकान[5] ॥ १९७ ॥

---

१ भूषण। २ वृक्ष। ३ बन्दर। ४ बहुत। ५ दुखी।

दुर्लभ है चोरहि दया, दुर्लभ अर्थिहि मान।
दुर्लभ वेस्यहि सील है, दुर्लभ मूर्खहि ज्ञान ॥ १९८॥

मूरख को संग ना करै, करै सबै जो अर्थ।
पै सठ को संग ना करै, धन जावै असु व्यर्थ ॥ १९९॥

दुष्ट साधु सों होत है, साधु दुष्ट सों होत।
कस्यप-सुत कंचनकसिपु, तेहि प्रहलादउ होत ॥ २००॥

दुज हरखत मधुरहि निरखि, मोर मुदित घन पेख।
सज्जन पर सुख लखि मुदित, दुर्जन पर दुख देख ॥ २०१॥

जासु प्रकृति विधि जिमि रची, तिमि पावै सुख सोय।
गीध मृतक तन खात है, नहिं पाये दुख होय ॥ २०२॥

विद्या सम्पति जुक्तहू, तजै दुष्ट सहवास।
अहि[1] मनि जुक्तहु प्रानहर, नहिं करिये विस्वास ॥ २०३॥

तजे दुष्ट नहिं दुष्टता, करो किती उपकार।
हवन करत कर दहत ज्यों, दहन[2] भूमि भरतार ॥ २०४॥

मान जाय तौ जाय पै, नहीं दुष्ट हठ जाय।
जरी परी रसरी तदपि, ऐंठन प्रगट लखाय ॥ २०५॥

कढ़ै तेल पाषान सों, फूल खेत के माहिं।
ऊसर में अंकुर कढ़ै, पै खल में बुधि नाहिं ॥ २०६॥

धन फल कृपिनहिं होय नहिं, सुमन न अम्बर[3] माहिं।
अहि विस मन्त्र उतारिये, खल विष उतरै नाहिं ॥ २०७॥

सब की औषध जगत में, खल की औषधि नाहिं।
चूर होहिं सब औषधी, परि कै खल के माहिं ॥ २०८॥

---

१ साँप। २ अग्नि। ३ आकाश।

दूजे को उत्कर्ष नहिं, देखि सकत जग बीच।
पर निन्दा सुनि कै मुदित, सो पापी अति नीच ॥ २०९ ॥
करिय नीच सहवास नहिं, जे अघकाय[1] मलीन।
मति बिगरति आदर घटत, होत धरमरति छीन ॥ २१० ॥
सदा छली सों डरिय जिय, करिय नहीं विश्वास।
ए सरवस मोचन करत, समय पाइ रहि पास ॥ २११ ॥
गरुआ[2] गिरि तातें धरनि, ताहू तें अघवन्त।
अघवन्तहु तें पिसुन[3] जेहिं, भारत धरनि धसन्त ॥ २१२ ॥
भागिनेय[4] जामात[5] अरु, व्याल[6] विडाल[7] कुरूप।
नारि सुवन सह भिन्न गृह, नहिं विस्वासिय भूप ॥ २१३ ॥

कवित्त।

होय जो लजीलो ताहि मूरख बतावत हैं,
धर्म धरै ताहि कहैं दम्भ को बढ़ाव है।
चले जो पवित्रता सो कपटी कहत तैसे,
सूर को कहत या में दया को अभाव है ॥
गिरिधरदास साधुताई देखि कहैं,
उदर के हेत कियो भेख को बनाव है।
जे जे अहैं गुनि तिन्हैं औगुनी बखानैं यह,
जगत में पापिन को सहज सुभाव है ॥ २१४ ॥

---

१ पापी। २ भारी। ३ निन्दक। ४ भानजा, भगना। ५ जमाई, दामाद। ६ साँप। ७ बिलाव।

पितु समीप तब जायहु भैया।
भइ बड़ी बेर जाय बलि मैया ॥
मातु बचन सुनि अति अनुकूला।
जनु सनेह सुरतरु[1] के फूला ॥
सुख मकरन्द[2] भरे श्रिय मूला।
निरखि राममन भँवर न भूला ॥
धर्म्मधुरीन[3] धर्म्मगति जानी।
कहेउ मातु सन मतिमृदु बानी ॥
पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू।
जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥
आयसु[1] देहु मुदित मन माता।
जेहि मुद मङ्गल कानन जाता ॥
जनि सनेहबस डरपसि भोरे।
आनँद मातु अनुग्रह तोरे ॥

दोहा।

बरस चारिदस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान।
आय पाय पुनि देखिहौं, मन जनि करसि मलान[2] ॥ २ ॥

चौपाई।

बचन बिनीत मधुर रघुबर के।
सर सम लगे मातु उर करके ॥

१ कल्पवृक्ष। २ [illegible] ३ [illegible]
१ [illegible] २ [illegible]

पितु समीप तब जायहु भैया।
भई बड़ी बेर जाय बलि मैया॥
मातु बचन सुनि अति अनुकूला।
जनु सनेह सुरतरु[1] के फूला॥
सुख मकरन्द[2] भरे श्रिय मूला।
निरखि राममन भँवर न भूला॥
धर्मधुरीन[3] धर्मगति जानी।
कहेउ मातु सन अति मृदु बानी॥
पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू।
जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥
आयसु[4] देहु मुदित मन माता।
जेहि मुद मङ्गल कानन जाता॥
जनि सनेहबस डरपसि भोरे।
आनंद मातु अनुग्रह तोरे॥

दोहा।

बरस चारिदस बिपिन बस, करि पितु बचन प्रमान।
आय पाय पुनि देखिहौं, मन जनि करसि मलान[5]॥ २॥

चौपाई।

बचन बिनीत मधुर रघुबर के।
सर सम लगे मातु उर करके॥

---

१ स्नेहरूपी कल्पवृक्ष। २ आनन्दरूपी रस। ३ धर्म का भार उठाने वाले। ४ आज्ञा। ५ उदास।

सहमि सूखि सुनि सीतल बानी ।
जिमि जवास[१] पर पावस पानी ॥
कहि न जाय कछु हृदय बिषादू ।
मनहुँ मृगी सुनि केहरि[२] नादू ॥
नयन सजल तनु थर थर काँपी ।
माँजा[३] मनहुँ मीन कहँ व्यापी ॥
धरि धीरज सुत बदन निहारी ।
गद गद बचन कहत महतारी ॥
तात पितुहिं तुम प्रानपियारे ।
देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ॥
राज देन कहँ सुभ दिन साधा ।
कहेउ जान बन केहि अपराधा ॥
तात सुनावहु मोहिं निदानू ।
को दिनकरकुल[४] भयउ कृसानू ॥

दोहा ।

निरखि राम रुख सचिवसुत , कारन कहेउ बुझाय ।
सुनि प्रसङ्ग रहि मूक गति , दसा बरनि नहिं जाय ॥ ३ ॥

चौपाई ।

राखि न सकइ न कहि सक जाहू ।
दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू ॥

---

१ जवासा । २ सिंह । ३ वर्षा के नये जल का फेन जिसके बिकार से
को माँजा नाम रोग उत्पन्न होता है । ४ सूर्यवंश ।

लिखत सुधाकर[1] लिखगा राहू ।
विधि गति वाम सदा सब काहू ॥
धर्म्म सनेह उभय मति घेरी ।
भइ गति साँप छछूँदरि केरी ॥
राखौं सुतहिं करौं अनुरोधू ।
धर्म जाइ अरु बंधु विरोधू ॥
कहौं जान वन तौ बड़ि हानी ।
संकट सोच विकल भइ रानी ॥
बहुरि समुझि तियधर्म सयानी ।
राम भरत दोउ सुत सम जानी ॥
सरल सुभाव राम महतारी ।
बोली वचन धीर धरि भारी ॥
तात जाउ बलि कीन्हेउ नीका ।
पितु आयसु सब धर्म्मक टीका ॥

दोहा ।

राज देन कह दीन्ह वन , मोहिं न दुख लवलेस ।
तुम विनु भरतहिं भूपतहि , प्रजहिं प्रचण्ड कलेस ॥ ४॥

चौपाई ।

जौ केवल पितु आयसु ताना ।
तौ जनि जाहु जाई बलि माता ॥
जौ पितु मातु कहेउ वन जाना ।
तौ कानन सत अवध समाना ॥

---

१ चन्द्रमा ।

पितु बनदेव मातु बनदेवी ।
खग मृग चरण सरोरुह[1] सेवी ॥
अन्तहु उचित नृपहिं बनवासू ।
बय[2] बिलोकि हिय होत हरासू ॥
बड़भागी बन अवध अभागी ।
जो रघुबंसतिलक तुम त्यागी ॥
जौ सुत कहौं संग मोहिं लेहू ।
तुम्हरे हृदय होहिं संदेहू ॥
पूत परम प्रिय तुम सबही के ।
प्रान प्रान के जीवन[3] जी के ॥
ते तुम कहहु मातु बन जाऊँ ।
मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ ॥

दोहा ।

बिचारि नहिं करउं हठ , झूठ सनेह बढ़ाइ ।
मानि मातु के नात बलि , सुरति बिसरि जनि जाइ ॥ ५ ॥

चौपाई ।

देव पितर सब तुमहिं गुसाईं ।
राखहु पलक नयन की नाईं ॥
अवधि अम्बु[4] प्रिय परिजन मीना ।
तुम करुनाकर धरमधुरीना ॥
अस बिचारि सोई करहु उपाई ।
सबहि जियत जेहि भेंटेहु आई ॥

---

१ कमल । २ अवस्था । ३ जल । ४ जल ।

जाहु सुखेन बनहिं बलि जाऊँ ।
करि अनाथ जन परिजन गाऊँ ॥
सब करि आज सुकृतफल बीता ।
भयउ कराल[1] काल बिपरीता ॥
बहुविधि विलपि चरन लपटानी ।
परम अभागिन आपुहिं जानी ॥
दारुन दुसह दाह उर व्यापा ।
बरनि न जाइ बिलाप कलापा ॥
राम उठाइ मातु उर लाई ।
कहि मृदुबचन बहुरि समुझाई ॥

दोहा ।

समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ ।
जाइ सासु पद कमल युग, बन्दि बैठि सिर नाइ ॥

चौपाई ।

दीन्ह असीस सासु मृदुबानी ।
अति सुकुमारि देखि अकुलानी ॥
बैठि नमितमुख सोचति सीता ।
रूपरासि पति प्रेम पुनीता ॥
चलन चहत बन जीवन नाथा ।
कवन सुकृत सन होइहिं साथा ॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना ।
बिधि करतब कछु जाइ न जाना ॥

---

१ भयानक ।

चारु चरननख लेखति धरनी[१]।
नूपुर[२] मुखर[३] मधुर कवि बरनी ॥
मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं।
हमहिं सीय पद जनि परिहरहीं ॥
मंजु[४] बिलोचन मोचति बारी[५]।
बोली देखि राम महतारी ॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी।
सास ससुर परजनहिं पियारी ॥

दोहा।

पिता जनक भूपाल मनि, ससुर भानुकुल भानु।
पति रविकुल कैरव[६] बिपिन, बिधु[७] गुनरूप निधान ॥ ७ ॥

चौपाई।

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई।
रूपरासि गुन सील सुहाई ॥
नयन पुतरि इव प्रीति बढ़ाई।
राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई ॥
कलप बेलि[८] जिमि बहु बिधि लाली।
सींच सनेह सलिल प्रतिपाली ॥
फूलत फलत भयउ विधि बामा।
जानि न जाय काह परिनामा ॥
पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा।
सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा ॥

---

१ पृथ्वी। २ पाजेब। ३ शब्द। ४ सुन्दर। ५ जल। ६ कमलिनी। ७ चन्द्रमा। ८ कल्प वृक्ष की लता।

जिवनमूरि जिमि जुगवति रहेऊँ ।
दीप बाति नहिं टारन कहेऊँ ॥
सो सिय चलन चहति बन साथा ।
आयसु कहा होइ रघुनाथा ॥
चन्द्किरन रस रसिक चकोरी ।
रवि रुख नैन सकै किमि जोरी ॥

दोहा ।

करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जन्तु बन भूरि ।
विष बाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवन मूरि ॥ ८ ॥

चौपाई ।

बनहित कोल[१] किरात[२] किसोरी ।
रची बिरंचि विषय सुख भोरी ॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ ।
तिनहिं कलेश न कानन काऊ ॥
कै तापस- तिय कानन योगू ।
जिन तपहेतु तजा सब भोगू ॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती ।
चित्र लिखित कपि देखि डराती ॥
सुरसरि सुभग बनज बनचारी ।
डाबर[३] जोग कि हंसकुमारी ॥

---

१ भील लोगों की एक विशेष जाति । २ जङ्गली मनुष्यों की एक [illegible]ेष जाति । ३ मैले पानी से भरा हुआ गड़हा ।

अस सिखाइ जस आयसु देहीं।
लै सिय देइँ असीसहिं गोदी॥
जौ सिय भवन रहै कह अम्बा।
मो कहँ होइ बहुत अवलम्बा॥
सुनि रघुबीर मातु प्रियबानी।
सील सनेह सुधारस सानी।

दोहा।

बंदि त्रिदसगन बिवेकमय, कीन्ह मातु परितोष।
दी प्रबोध आसिषहिं, गए बिपिन गुण दोष॥९॥

मातु समीप कहत सकुचाहीं।
बोले समय समुझि मन माहीं॥
राजकुमारि सिखावन सुनहू।
आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू॥
आपन मोर नीक जौ चहहू।
बचन हमार मानि घर रहहू॥
आयसु मोरि सासु सेवकाई।
सब बिधि भामिनि भवन भलाई॥
एहि तें अधिक धरम नहिं दूजा।
सादर सासु ससुर पद पूजा॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी।
होइहि प्रेम बिकल मति भोरी॥

तब तब तुम कहि कथा पुरानी ।

सुन्दरि समुझायहु मृदु बानी ॥

कहौं सुभाय सपथ सत मोहीं ।

सुमुखि मातुहित राखौं तोहीं ॥

दोहा ।

गुरुश्रुतिसम्मत धर्म्मफल, पाइय बिनहिं कलेस ।

हठवस सब संकट सहे, गालव[1] नहुष[2] नरेस ॥ २० ॥

चौपाई ।

मैं करि पुनि प्रमान पितु बानी ।

वेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी ।

दिवस जात नहिं लागहि बारा ।

सुन्दरि सिखवन सुनहु हमारा ॥

जौ हठ करहु प्रेमबस बामा ।

तौ तुम्ह दुख पाउब परिनामा ॥

कानन कठिन भयङ्कर भारी ।

घोर घाम हिम[3] बारि बयारी ॥

कुस कण्टक मगु[4] कङ्कर नाना ।

चलब पयादे बिनु पदत्राना ॥

चरणकमल मृदु मंजु तुम्हारे ।

मारग अगम भूमिधर[5] भारे ॥

---

१ एक ऋषि का नाम । २ एक राजा का नाम । ३ पाला, बर्फ़, शीत । ४ रास्ता । ५ पहाड़ ।

कन्दर खोह नदी नद नारे।
अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ वृक[१] केहरि नागा[२]।
करहिं नाद सुनि धीरज भागा॥

दोहा।

भूमि सयन बलकल[३] बसन, असन कन्द फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, समय समय अनुकूल॥ ११॥

चौपाई।

नर अहार रजनीचर करहीं।
कपट बेष बन कोटिन फिरहीं॥
लागै अति पहाड़ कर पानी।
बिपिन बिपति नहिं जाय बखानी॥
ब्याल[४] कराल बिहग[५] बन घोरा।
निसचरनिकर[६] नारि नर चोरा॥
डरपहिं धीर गहन[७] सुधि आये।
मृगलोचनि तुम भीरु सुभाये॥
हंसगमनि तुम नहिं बन जोगू।
सुनि अपजस मोहिं देइहि लोगू॥
मानस[८] सलिल सुधा प्रतिपाली।
जियइ कि लवनपयोधि[९] मराली[१०]॥
नव रसाल[११] बन बिहरन सीला।
सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥

---

१ भेड़िया। २ हाथी। ३ वृक्ष की छाल। ४ सांप। ५ पक्षी। ६ राक्षसों का समूह। ७ वन। ८ मानसरोवर। ९ खारा समुद्र। १० हंसनी। ११ आम।

दोहा।

प्राननाथ करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम बिन रघुकुल कुमुद[1] बिधु, सुरपुर नरक समान॥ १३॥

चौपाई।

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई।
प्रिय परिवार सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुरु सुजन सहाई।
सुत सुन्दर सुसील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते।
पिय बिनु तियहिं तरनि[2] तें ताते॥
तनु धन धाम धरनि पुर राजू।
पति बिहीन सब सोक समाजू॥
भोग रोग सम भूषण भारू।
जमजातना[3] सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम बिनु जग माहीं।
मो कह सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी।
तैसहिं नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे।
सरद बिमल बिधु बदन निहारे॥

खग मृग परिजन नगर बन, बलकल बिमल दुकूल[4]।
नाथ साथ सुरसदन सम, परनसाल[5] सुखमूल॥ १४॥

---

१ धौला कमल जो रात को खिलता और दिन को मुँद जाता है। २ सूर्य। ३ यमराज का दंड। ४ दुपट्टा, ओढ़नी। ५ पत्तों की कुटी।

चौपाई ।

बनदेवी बन देव उदारा ।
करिहैं सासु ससुर सम चारा ॥
कुश किसलय[1] साथरी[2] सुहाई ।
प्रभु सँग मञ्जु मनोज तुराई[3] ॥
कन्द मूल फल अमिय अहारू ।
अवध सहस्र सुख सरिस पहारू ॥
छिन छिन प्रभु पद कमल बिलोकी ।
रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी[4] ॥
बन दुख नाथ कहेउ बहुतेरे ।
भय बिषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना ।
सब मिलि होइ न कृपानिधाना ॥
अस जिय जानि सुजान सिरोमनि ।
लेइय संग मोहिं छाड़िय जनि ॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी ।
करुनामय उर अन्तरजामी ॥

दोहा ।

राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानिये प्रान ।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद, सील सनेह निधान ॥ १५ ॥

चौपाई ।

मोहिं मग चलत न होइहि हारी ।
छिन छिन चरन सरोज निहारी ॥

---

१ पत्ते । २ आसनी, चटाई । ३ शय्या, तोशक । ४ चकई ।

सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं ।
मारग जनित सकल श्रम हरिहौं ॥
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं ।
करिहौं बायु मुदित मन माहीं ॥
श्रमकन सहित स्याम तनु देखे ।
कहँ दुख समय प्रानपति पेखे ॥
सम महि तृन तरु पल्लव डासी[1] ।
पाय पलोटिहि सब निशि दासी ॥
बार बार मृदु मूरति जोही ।
लागहिं ताप बयारि न मोहीं ॥
को प्रभु संग मोहि चितवनहारा ।
सिंह बधुहिं जिमि ससक सियारा ॥
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू ।
तुमहिं उचित तप मो कहँ भोगू ॥

दोहा ।

ऐसेहु बचन कठोर सुनि, जौ न हृदय बिलगान ।
तौ प्रभु बिषम वियोग दुख, सहिहैं पामर[2] प्रान ॥ १६ ॥

चौपाई ।

अस कहि सीय बिकल भइ भारी ।
बचन वियोग न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना ।
हठि राखे नहिं राखहि प्राना ॥

१ बिछाकर । २ नीच ।

कहेउ कृपालु भानुकुलनाथा ।
परिहरि सोच चलहु बन साथा ॥

नहिं विषाद कर अवसर आजू ।
बेगि करहु बन गमन समाजू ॥

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई ।
लगे मातु पद आसिष पाई ॥

बेगि प्रजा दुख मेटहु आई ।
जननी निठुर बिसरि जनि जाई ॥

फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी ।
देखिहौं नयन मनोहर जोरी ॥

सुदिन सुघरी तात कब होई ।
जननी जियत बदन बिधु जोई[1] ॥

दोहा ।

बहुरि बच्छ कहि लाल कहि, रघुपति रघुबर तात ।
कबहुं बुलाइ लगाइ उर , हरषि निरखिहौं गात ॥ १७ ॥

चौपाई ।

लखि सनेह कातरि महतारी ।
बचन न आव बिकल भइ भारी ॥

राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना ।
समय सनेह न जाय बखाना ॥

तब जानकी सासु पग लागी ।
सुनिय मातु मैं परम अभागी ॥

---

१ देखकर ।

सेवा समय दैव बन दीन्हा ।
मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा ॥
तजब छोभ[१] जनि छाड़िय छोहू[२] ।
करम कठिन कछु दोष न मोहू ॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी ।
दसा कवन विधि कहौं बखानी ॥
बारहिं बार लाइ उर लीन्ही ।
धरि धीरज सिख आशिष दीन्ही ॥
अचल होउ अहिवात[३] तुम्हारा ।
जब लगि गङ्ग जमुन जल धारा ॥

दोहा ।

सीतहिं सासु असीस सिख, दीन्ह अनेक प्रकार ।
चली नाय पद पदम सिर, अति हित बारहिं बार ॥ १८ ॥

चौपाई ।

समाचार जब लछिमन पाये ।
व्याकुल बदन बिलखि उठि धाये ॥
कम्प पुलक तनु नयन सनीरा ।
गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े ।
मीन दीन जनु जल तें काढ़े ॥
सोच हृदय विधि काह निहारा ।
सब सुख सुकृत सिरान हमारा ॥

१ क्षोभ, क्रोध । २ स्नेह, प्यार । ३ सुहाग, सौभाग्य ।

मो कहँ कहा कहब रघुनाथा ।
रखिहैं भवन कि लैहहिं साथा ॥
राम बिलोकि बन्धु कर जोरे ।
देह गेह सब सन तृन तोरे ॥
बोले बचन राम नयनागर[1] ।
सील सनेह सरल सुख सागर ॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू ।
समुझि हृदय परिनाम उछाहू ॥

दोहा ।

मातु पिता गुरु स्वामि सिख , सिर धरि करहिं सुभाय ।
लहेउ लाभ तिन जन्म के , नतरु[2] जन्म जग जाय ॥ १९ ॥

चौपाई ।

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई ।
करहु मातु पितु पद सेवकाई ॥
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं ।
राउ वृद्ध मम दुख मन माहीं ॥
मैं बन जाउँ तुमहिं लै साथा ।
होइहि सब विधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू ।
सब कहँ परै दुसह दुख भारू ॥
रहहु करहु सब कर परितोषू ।
नतरु तात होइहि बड़ दोषू ॥

---

१ नीतिनिपुण । २ नहीं तो ।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी ।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
रहहु तात अस नीति विचारी ।
सुनत लखन भये व्याकुल भारी ॥
सियरे बदन सूखि गये कैसे ।
परसत तुहिन[1] तामरस[2] जैसे ॥

दोहा ।

उतर न आवत प्रेम बस, गहे चरण अकुलाइ ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम, तजहु तो कहा बसाइ ॥

चौपाई ।

दीन्ह मोहिं सिख नीत गुसांई ।
लाग अगम आपनि कदराई ॥
नरवर धीर धरम धुर धारी ।
निगम[3] नीति केते अधिकारी ॥
मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला ।
मन्दर मेरु कि लेइ मराला[4] ॥
गुरु पितु मातु न जानैं काहू ।
कहौं सुभाय नाथ पतियाहू ॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई ।
प्रीति प्रतीत निगम निज गाई ॥
मोरे सबै एक तुम स्वामी ।
दीन बन्धु उर अन्तरजामी ॥

१ पाला । २ कमल । ३ वेद-शास्त्र । ४ हंस ।

धरम नीति उपदेशिय ताही ।
कीरति भूति[1] सुगति प्रिय जाही ॥
मन क्रम बचन चरन रत होई ।
कृपासिन्धु परिहरिय कि सोई ॥

दोहा ।

करुनासिन्धु सुबन्धु के, सुनि मृदु बचन विनीत ॥
समुझाये उर लाय प्रभु, जानि सनेह सभीत ॥ २१ ॥

चौपाई ।

माँगहु बिदा मातु सन जाई ।
आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥
मुदित भये सुनि रघुवर बानी ।
भयउ लाभ बड़ मिटी गलानी ॥
हर्षित हृदय मातु पहँ आये ।
मनहुँ अन्ध फिरि लोचन पाये ॥
जाइ जननि पग नायउ माथा ।
मन रघुनन्दन जानकि साथा ॥
पूछेउ मातु मलिन मन देखी ।
लखन कही सब कथा बिसेखी ॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा ।
मृगी देखि जनु दव[2] चहुँ ओरा ॥
लखन लखेउ भा अनरथ आजू ।
एहि सनेह बस करब अकाजू ॥

---

१ विभूति, सम्पत्ति । २ दावानल ।

मांगत बिदा समय सकुचाहीं ।
जान संग बिधि[1] कहिहि कि नाहीं ॥

दोहा ।

समुझि सुमित्रा रामसिय , रूप सुसील सुभाय ।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिर , पापिन दीन्ह कुदाय ॥ २२ ॥

चौपाई ।

धीरज धरेउ कुअवसर जानी ।
सहज सुहृद बोली मृदु बानी ॥
तात तुम्हार मातु बैदेही ।
पिता राम सब भांति सनेही ॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू ।
तहाँ दिवस जहँ भानु प्रकासू ॥
जो पै सीय राम बन जाहीं ।
अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ॥
गुरु पितु मातु बन्धु सुर साईं ।
सेइय सकल प्रान की नाईं ॥
राम प्रान प्रिय जीवन जी के ।
स्वारथ रहित सखा सबही के ॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते ।
मानिय सबहिं राम के नाते ॥
अस जिय जानि संग बन जाहू ।
लेहु तात जग जीवन लाहू ॥

---

१. [illegible]

तुलसी सुतहिं सिख देइ मायसु देइ पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अचल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥

सोरठा।

मातु चरन सिर नाइ, चले तुरत संकित हिये।
बागुर[1] बिषम[2] तुराइ, मनहुं भाग मृगभाग बस॥ २४॥

चौपाई।

गये लखन जहँ जानकिनाथा।
भए मुदित मन पाइ प्रिय साथा॥
बन्दि राम सिय चरन सुहाये।
चले संग नृप मंदिर आये॥
कहहिं परस्पर[3] पुर नर नारी।
भलि बनाइ बिधि बात बिगारी॥
तनु कृस मन दुख बदन मलीना।
बिकल मनहुं माखी मधु छीना॥
कर मीजहिं सिर धुनि पछिताहीं।
जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं॥
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा।
बरनि न जाय बिसाद अपारा॥
सचिव उठाय राउ बैठारे।
कहि प्रिय बचन राम पगु धारे॥
सिय समेत दोउ तनय[4] निहारी।
व्याकुल भये भूमिपति भारी॥

१ फन्दा, जाल। २ कठिन। ३ आपस में। ४ पुत्र।

दोहा।

सीय सहित सुत सुभग दोउ, देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेह बस, राउ लिये उर लाइ ॥ २५ ॥

चौपाई।

सकै न बोलि विकल नरनाहू।
सोक जनित उर दारुन दाहू ॥
नाइ सीस पद अति अनुरागा।
उठि रघुवीर बिदा तब माँगा ॥
पितु असीस आयसु मोह दीजै।
हर्ष समय बिस्मय[1] कत कीजै ॥
तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू[2] ॥
जस जग जाइ होइ अपवादू[3] ।
सुनि सनेह बस उठि नरनाहू।
बैठारे रघुपति गहि बाहू ॥
सुनहु तात तुम कहँ मुनि कहहीं।
राम चराचर नायक अहहीं ॥
सुभ अरु असुभ करम अनुहारी।
ईस देइ फल हृदय बिचारी ॥
करै जो करम पाव फल सोई।
निगम नीति अस कह सब कोई ॥

---

१ आश्चर्य्यमय शोक। २ उन्मत्तता, असावधानी । ३ अ
वदनामी।

दोहा ।

ग़ैर करै अपराध कोइ, ग़ैर पाव फल भोग ।
अति विचित्र भगवन्त गति, को जग जानै जोग[1] ॥ २६ ॥

चौपाई ।

राउ राम राखन हित लागी ।
बहुत उपाय कीन्ह छल त्यागी ॥
लखेउ राम रुख रहत न जाने ।
धरम धुरन्धर धीर सयाने ॥
तब नृप सीय लाइ उर लीन्हीं ।
अति हित बहुत भाँति सिख दीन्हीं ॥
कहि बन के दुख दुसह सुनाये ।
सासु ससुर पितु सुख समुझाये ॥
सिय मन राम चरन अनुरागा ।
घर न सुगम बन विषम न लागा ॥
ग़ैरउ सबहि सीय समुझाई ।
कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई ॥
सचिव नारि गुरु नारि सयानी ।
सहित सनेह कहहिं मृदु बानी ॥
तुम कहँ तौ न दीन्ह बनबासू ।
करहु जो कहहिं ससुर गुरु सासू ॥

[1] योग्य, भारी ।
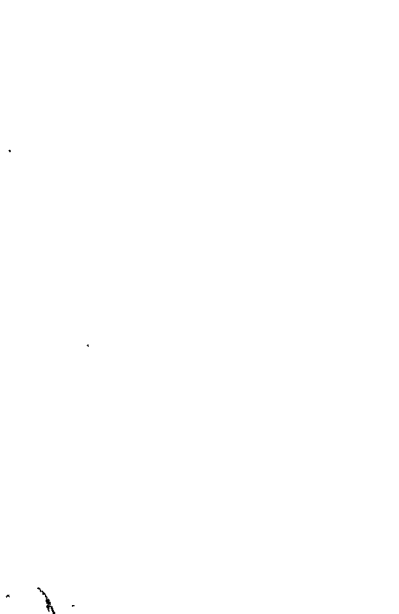
दोहा।

सिख र मृदु, सुनि सीतहिं न सुहानि।
खि, जनु चकई अकुलानि॥ २७॥

न देई।
केई॥
।
॥
रा।
रा॥
।
ाऊ॥
भावा।
पावा॥
।

दोहा।

सिख सीतल हित मधुर मृदु, सुनि सीतहिं न सुहानि।
सरद चन्द्र चांदनि निरखि, जनु चकई अकुलानि ॥ २७ ॥

चौपाई।

सीय सकुच[1] बस उतर न देई।
सो सुनि तमकि[2] उठी कैकेई ॥
मुनि पट भूषण भाजन आनी।
आगे धर बोली मृदु बानी ॥
नृपहिं प्रान प्रिय तुम रघुबीरा।
सील सनेह न छाड़िहि भीरा ॥
सुकृत सुयस परलोक नसाऊ।
तुम्हहिं जान बन कहहिं न राऊ ॥
अस विचार सोइ करहु जो भावा।
राम जननि सिख सुनि सुख पावा ॥
भूपहिं बचन बान सम लागे।
करहिं न प्रान पयान अभागे ॥
सोक बिकल मुरछित नरनाहू।
कहा करिय कछु सूझ न काहू ॥
राम तुरत मुनि भेष बनाई।
चले जनक जननी सिर नाई।

दोहा।

सजि बन साज समाज सब, बनिता बन्धु समेत।
चले बन्दि गुरु विप्र पद, प्रभु करि सबहिं अचेत ॥

---

१ संकोच। २ क्रोध करके, लाल होकर।